स्वर्गीय पंडित भूधरदासजी कृत

चर्चा समाधान ।

जिसको

मूलचंद्र गुप्त गोलापूर्व जैन मालिक-श्रीजैनग्रंथप्रभाकर कार्यालय,
६।१ महेंद्रबोस लेन श्यामबाजार कलकत्ता ने
श्रीलाल जैन द्वारा जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें
छपाकर प्रकाशित किया।

प्रथमावृत्ति १००० } श्री वीर निर्वाण संवत् २४४६ सन् १९२० ई० { न्योछावर २॥=)

विषय सूची ।

सं०		पृ० नं०
१	मुनिराजके ऐसा कौनसा संदेह हुवा होइ तिसका केवली श्रुतकेवली विना निरणय न होय	६
२	सम्यग्दर्शनका क्या स्वरूप है ?	६
३	व्यवहार सम्यक्त्व किसे कहिये अर निश्चय सम्यक्त्व किसे कहिये	७
४	सम्यक्त्वके भेद निसर्गज अधिगमजका क्या स्वरूप है ?	८
५	पंचलब्धिमें करणलब्धिका स्वरूप कहा ?	९.
६	सम्यक्त्वके भेद छह कहे तिनका स्वरूप कहा?	११
७	उद्वेलना विसंयोजनाविषै फेर कहा ?	१६
८	कोई जीव उपशमश्रेणी चढे तो कैवार चढे	१७
९	अंतर्मुहूर्त्तके कितने विकल्प हैं ?	१७
१०	आवलीका स्वरूप क्या है	१७
११	क्षपकश्रेणीवाला नवमे गुणस्थानविषै नव भागकरि छत्तीस प्रकृति क्षय करे और उपशमश्रेणी चढै सो कहा करे	१८
१२	अविरत नाम चोथे गुणस्थानकी कितेक काल स्थिति है	१८
१३	छठे सातमे गुणस्थान डबरूकी नाईं स्थिति कै वार करै	१९
१४	छठेसों ग्यारहमे गुणस्थान ताईं उत्कृष्ट जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त कही अरु एक समय भी कही सो क्यों है ?	२०
१५	सम्यक्त्व सहज साध्य है के जतन साध्य है ?	२१
१६	विद्यमान भरतखंडविषै पंचमकालमें सम्यक्ती केते हैं	२१
१७	सम्यक्त्वके वाह्य लक्षण कहा ?	१२
१८	दशाध्याय सूत्रके नवमे अध्यायविषैं दश पुरुष सम्यग्दृष्टि आदि परस्पर असंख्यातगुणी अधिक निर्जरावाले कहे तिनका क्या स्वरूप है ?	२३
१९	केवलि समुद्घातके अष्ट समयमें त्रसनाडीके वाह्य जीवके प्रदेश कवै पाइये	२५
२०	समुद्घातकेवली तो प्रसिद्ध है उनकी कथा वहुत प्रसिद्ध क्या नाहीं	२७
२१	तेरहवे गुणस्थान केवलीके साता वेदनीयका	

	बंध कहा उसकी स्थिति कैसी ?	२८
२२	तेरहमे चौदहमे गुणस्थान ८५ प्रकृतिकी सत्ता है तामैं उदय कौनका है	२८
२३	तेरहमे चौदहमे गुणठाणे केतेक पाप प्रकृति सत्ता विषैं हैं सो कैसैं खिरैं	३०
२४	केवली परमौदारिक देहके धरणहारे हैं सो देह जातिमें औदारिक है तिसकी स्थिति कैसैं हैं	३४
२५	परमौदारिक शरीरका क्या स्वरूप है	३६
२६	संहनन कौन कौन जायेगा है	३८
२७	तीर्थंकर केवलीके छयालीस गुण कहे और सामान्यकेवलीके कितने होंइ	३८
२८	तीर्थंकरके दश जन्म अतिशयमें अनंतबल कह्या और केवलज्ञानके अतिशयमें है इन दोनोंमे विशेष कौंनसा है	३९
२९	तीर्थंकरके छयालीस गुणविषै वाणीप्रसंग तीनवार आया और अतिशयमें आया सो क्या	३९
३०	समवशरणमें केवली कहां तिष्ठै हैं	४०
३१	स्पर्शनेंद्री आदि शीतोष्ण ग्रहण करैं सो किसका गुण है	४०
३२	तीर्थंकरके आठ प्रातिहार्यमें अशोक वृक्ष है सो क्या	४३
३३	समवशरणमें स्तूप हैं तिनकी ऊंचाई तथा विस्तार कहा ?	४३
३४	तीर्थंकरकी आयु मास रहैं समवशरण विघटै कि नाहीं	४४
३५	चौवीस तीर्थंकर किम २ आसनसौं मोक्ष गये	४५
३६	केवलीके प्रतिसमय क्षायक लाभका प्रसंग कैसैं	४५
३७	समवशरणमें केवली कौनसे आसन रहैं	४६
३८	मोक्षविषै कौन आकार कह्या	५२
३९	संसारमें छोटी बडी देह समुद्घात विना क्या प्रमाण है	५३
४०	तीन लोकके अग्र अष्टम पृथ्वी है तिसके मध्य छत्राकार सिद्धशिला है सो कैसै हैं	५४
४१	राजूका प्रमाण क्या	५५
४२	अढाई द्वीपविषै कछवेकी टोंटीकी नाई मोक्षमार्ग चलै है सो कैसै हैं	५७
४३	आचार्य उपाध्याय साधु इन तीनो पदवी विषै उत्कृष्ट पदवी कया	५८
४४	मूलगुणविषै तीन गुप्ति क्यों न लीनी	६०
४५	अठाईस मूलगुणमें सम्यक्त्व कोई क्यों न कह्या	६०
४६	साधुके उत्तरगुण चौरासी लाख ते कौन हैं ?	६०
४७	अठाईस मूलगुणमें वस्त्रत्याग क्यों न कह्या	६१

४८	आचार्य उपाध्याय पदविषै क्या अंतर है	६३
४९	रात्रिके समय मुनि हलन चलन तथा वचन करै कि नाहीं	६३
५०	कायोत्सर्गका क्या स्वरूप है	६४
५१	कायोत्सर्गके समय आसन कौनसा है	६४
५२	वर्षाकालविषै मुनि विहार करै कै नाहीं	६४
५३	मुनि आहार निमित्त चर्या किसप्रकार करै	६५
५४	मुनि आहार निमित्त पंचघरसों आगै जाय कै नहीं	६७
५५	ऋषभदेवजीने इक्षुरसका आहार लिया सो सचित्त है कि अचित्त है	६८
५६	जंघाचारी साधू जंघासों हाथ दे चालैं सो कैसैं हैं	६९
५७	किसही साधूने सम्यक्त वम्या सो पूज्य है कि नाहीं ?	६९
५८	अपात्र दान विफल कह्या सो क्यों है	७३
५९	मुनिराजके चौबीस प्रकारके परिग्रहका निषेध है सो कौन हैं	७३
६०	मुनिराज वस्त्रादि उपकर्ण राखै कि नाहीं	७५
६१	तीर्थंकरके आहारवाला कै भवमें मुक्त होइ	७७
६२	शांति कुंथु अर ए तीनोंके तीन पद हुवे सो क्योंकर है ?	७८
६३	बाहुबलिजी मान वश अंगुष्ठ ऊपर वर्ष भर रहे सो कैसैं	७९
६४	जुगके आदि बाहुबली मुक्त हुवे सो केसे हैं	८०
६५	तीर्थंकर नाम प्रकृतिके आश्रव सोलह कारण सो कैसे हैं	८०
६६	तीर्थंकरकी माता रजस्वला होय कि नाही	८२
६७	तीर्थंकरकी मुनिसे भेंट होय कि नाही	८३
६८	तीर्थंकरकी माताको गर्भ समय छप्पन कुमारी सेवैं सो कैसैं हैं	८४
६९	बाहुबलीजीकी प्रतिमा पूज्य है कि नाहीं	८४
७०	पार्श्वनाथजीके मस्तकपर धरनेंद्रने फण किया और अब है सो क्यों है	८५
७१	पार्श्वनाथ स्वामीके सात फण तो जाणे पण सुपार्श्वनाथके नव फण केसे हैं	८६
७२	चौबीस तीर्थंकरके लक्षण केसे हैं	८६
७३	प्रतिमाजीका न्हौन जोग्य है कि अजोग्य है	८६
७४	प्रतिमाजीके पूजाका विवर्ण कैसैं है	८८
७४	प्रतिमाजीके कान लांबा क्योंकर है	८९
७५	सास्वती प्रतिमाजीका क्या स्वरूप है	९०
७६	गृहस्थ निजघर प्रतिमा पूजै कि नाही	९०

७७ देव पूजनविषै पुरुष कैसा चाहिये ९०
७८ पूजा समय पूजक पुरुष कौन दिशा रहै ९१
७९ भगवानका गंधोदक लेना कि नाहीं ९३
८० ऊपर शेषाक्षत कहे सो कहा कहावे ९४
८१ प्रतिमाजीके अभिषेक समय दर्शन जोग्य हैं कि नाहीं ९४
८२ स्त्रीको पूजा करनी जोग्य है कि नाहीं ९४
८३ निर्माल्य किसे कहिये ९६
८४ पूजाके समय दीप चढावना जोग्य है कि नाहीं ९९
८५ कलिकुंडकी पूजाका क्या स्वरूप है १००
८६ अष्टान्हिका पर्वविषै नंदीश्वर द्वीपे देवता वहां रहे हैं कि तिन आवे जाय हैं १०१
८७ नदीश्वरद्वीपे देव विक्रिया जाय कि मूल शरीर जाय है १०२
८८ देवता विक्रियाकरि देशांतर जांय सो पृथक् विक्रिया क्या? १०३
८९ देवता धातुवर्जित हैं सो भोग अवसान कैसै हैं १०२
९० अढाई द्वीपके बाहिर मनुष्यका बाल न जाय सो क्योंकर है १०३
९१ अढाई द्वीपमें उनतीस आंक प्रमाण मनुष्य हैं तिनमें तीन चार भाग स्त्री हैं ते अढाई द्वीप पैंतालीस लाख योजन हैं सो कैसे हैं १०३
९२ पर्याप्त अपर्याप्तका क्या स्वरूप है १०४
९३ पर्याप्ति और प्राणविषै क्या भेद है १०४
९४ अलब्धपर्याप्त मनुष्य कहां कहां उपजै १०५
९५ निगोदके पांच गोलक हैं सो क्योंकर है १०६
९६ सूक्ष्म बादर निगोदकी आयुका प्रमाण क्या है १०७
९७ आयुके स्थिति बंधविषै उत्कर्षण क्या है १०८
९८ त्रिलोकसारविषै स्वर्गोंकी आयु किस भांति कही है ११०
९९ भुज्यमान आयुके त्रिभागविषै शेषपरभवकी आयु बंधै है सो कैसे है १११
१०० आठकर्मविषै आयुकर्मकी स्थिति और सात कर्म समान है कि और प्रकार है ११३
१०१ छठे कालमें बहत्तर जुगल्या कैसे हैं ११६
१०२ वज्रऋषभ नाराच संहननका छेद भेद होय कि नाहीं १२०
१०३ मनपर्ययवाला अढाईद्वीप बाहेरके जीवनिके मनकी बात जाणे के न जाणे १२१
१०४ जातिस्मरण ज्ञानका क्या स्वरूप है १२१
१०५ जोतिषी विमानोंके जोजन व कोश छोटे हैं वा बडे हैं १२२

१०६	जंबूद्वीपमें दोय चंद्रमा दोय सूर्य हैं सो सूर्यका प्रकाश लाख योजन है सो कैसे है	१२५
१०७	आकाशका तारा टूटै सो क्या समाधान	१२५
१०८	परमाणूकौं षट्कोण कहें सो क्या है ?	१२६
१०९	शनीचरके विमानका वर्ण कैसा है	१२९
११०	सुमेरु पर्वतकी ऊंचाई चौढाई कैसे हैं	१२९
१११	सुमेरु पर्वतका स्कंध हजार योजन मोटी चित्रापृथ्वीविषै है सो वह कौनसी है ?	१२९
११२	छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके आहारक किस निमित्त निकसै	१३०
११३	मुनिराजके षडावश्यकमें कांई २ फेर है	१३०
११४	तीर्थंकरके समवशरणमें तीन काल वाणी खिरै सोही मुनिके सामायिकका काल है सो कैसें बनै	१३१
११५	अभिन्नदशपूर्व साधु किसै कहिये	१३१
११६	अष्टप्रकारी पूजाका वडा पुण्य है सो कैसे है	१३१
११७	रोहिणी व्रतका क्या स्वरूप है	१३२
११८	चतुर्दशी आदि व्रतविषै तिथिघटी पडै तव कैसे करै	१३२
११९	अष्टान्हिका व्रतकी विधि किस प्रकार है	१३४
१२०	बाईस अभक्षविषै लोनी क्यों कही	१३६
१२१	विदलका क्या स्वरूप व क्या दोष है	१३६
१२२	भरत रामादि सम्यग्दृष्टि थे इनके कौन गुणस्थान कहिये	१३७
१२३	जदुवंशी उत्तम थे पशु क्यों जुडाये	१३८
१२४	राजमती कौनसे राजाकी बेटी है	१३८
१२५	स्वेतांवरमें नोन सचित्त है दिगम्बरमें क्या है	१३८
१२६	रेशम लीन है कि अलीन है	१३९
१२७	दिवालीके निर्वाणका समय कौनसा	१३९
१२८	जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है सो गतिसों गत्यंतरविषै कैसे है	१४०
१२९	भरतचक्रीने कैलाशपै बहत्तर चैत्यालय कराये हैं इसका क्या समाधान है ?	१४१
१३०	स्वयंभूरमण समुद्रके मच्छका कैसा स्वरूप है	१४२
१३१	श्रेणिक आदि भावी तीर्थंकर कौंन होयेंगे	१४३
१३२	वर्द्धमानस्वामीके मुक्ति गये पीछे केवली श्रुतकेवली आदिकी परिपाटी कैसी है	१४४
१३३	गृहस्थ उत्तमधन कहां कहां खर्चै	१४८
१३४	जैनमतमें गृहस्थ तिलक किस विधि करै	१४९
१३५	चौरासी लाख जोनीका क्या स्वरूप है	१५०
१३६	संसारी जीवके एकसौ साढे नवाणवे कोटि कुल केसे हैं	१५३

१३७ यह संसारी आत्मा अनादि सान तत्त्वरूप निरंतर समय २ परिणामै सो क्योंकर है १५४
१३८ जितने जीव मुक्ति जांय तितने व्यवहार राशि निगोद सो आवैं सो कैसे है १५५
१३९ आदिपुराण प्रमुख जैनपुराणविषै केतेक साधरमी जन अरुचि करे हैं रागवर्धनरूप माने हैं यह श्रद्धान जोग्य है कि अजोग्य है १५६

॥ इति विषय सूची समाप्त ॥

निवेदन ।

इस ग्रंथ का संपादन दो प्रतियों के आधारसे हुआ है। दोनो ही प्रतियां अशुद्ध थीं। यथाशक्ति संस्कृत और प्राकृतके पाठोंमें संशोधन कराया गया है। बुद्धिमांद्य तथा प्रमाद आदि कारणोंसे जो त्रुटि रह गई हो उसे चतुर पाठक गण सुधार कर पढ़ें और साथ ही हमें भी सूचना देदें।

निवेदक---

मूलचंद्र गुप्त ·

श्रीपरमात्मने नमः ।

चर्चासमाधान ।

मंगलाचरण ।

दोहा—जयो वीर जिन चंद्रमा उदय अपूरव जास । कलियुग काले पाखमें कीनो तिमिर विनास ॥
वंदो वाणी भगवती विमलजोति जगमांहि । भरम ताप जासों मिटै भविसरोज विकसांहि ॥
गौतमगुरुके पदकमल हृदयसरोवर आन । करों करों नुति भावसों करि अष्टांग विधान ॥

अष्टांग प्रणामका निर्णय—

जुगलपान जुगपांइ पंचम सीस सपर्स भुवि । विमलमनोवचकाय यह अष्टांग प्रणाम हुव ॥
"हस्तौ पादौ तथा द्वौ द्वौ शिरो भूमौ च पंचमं । मनोवाक्कायशुद्धिश्च प्रणामोऽष्टांगमुच्यते ॥"

दो०—आदि मधुर,अवसानकटु कामभोग सब जान । आदि विरस,अवसानमधु तपकारज परधान ॥
आदि अंतमें विरस है वैरभाव दुःखरूप । आदि मधुर आगे मधुर मैत्रीभाव अनूप ॥

१-दोनों हाथ और दोनों पैर तथा भूमिमें मस्तकका नवाना और मन वचन कायकी शुद्धि इसप्रकार प्रणामके आठ अंग कहे है ।

चारकाम ये जगतमें दोइ आहित हित दोइ। यथाशक्ति हित आदरो अहित सर्वथा खोइ ॥
जिनश्रुतिसागरतैं कढ्यो चरचा अमृत महान। मतिअंजुलि परमान निज करो निरंतर पान॥
जेठ मासके दिनबड़े माह बड़ेरी रात। जिनमतकी चरचा विना विफल करो मति भ्रात ॥
जिनमत चरचा परमरस चाख्यो नहीं रसाल। नरतरुवर उपजा सुभग फल नहीं लाग्यो डाल॥
पठन प्रश्न श्रुतचिंतवन परिवर्तन उपदेश। पंचभेद स्वाध्यायके चरचा नाम अशेष ॥

कहा भी है—

सो०—सुवचन शाभलतांज फेरै फुणि माडै नहीं। जानो जलसप याहि माणिधर होइ न मेघसुत ॥
दो०—सुवचन बानी जैन की और सुवचन न कोइ। गुणसों सिंह जु परखिये नाम सिंह नहिं होइ ॥
सुवचन रुचै सुबुद्धिकौं, मूरख होइ न लीन। दाख चाख डौंया रंजे, नहि वायस बुधिहीन ॥
पंचम काल कराल अति, देखो सुधी विचार। जिनमतके मरमी पुरुष, बिरले भरत मझार ॥
जैनधर्मको मर्म है, महादुर्लभ जगमाहि। समकितको कारण सही, यामें संशय नाहिं ॥
जैनधर्मको मर्म लह, वरतै मानकषाय। यह अपूर्व अचरज सुनौ, जलमें लागी लाय ॥
जैनधर्म लह मद बढ़ै, वैद न मिलि है कोइ। अमृतपान विष परिणवै, ताहि न औषधि होइ ॥
जपकर तपकर दानकर, कर कर पर उपगार। जैनधर्मको पायकर, मानकषाय निवार ॥
कालदोषतैं भ्रम पर्‍यो जिनमत चरचा मांहि। तिनको निर्णय जोग है, जिनशासनकी छांह॥

१ जो पुरुष हितकर वचन सुनकर भी उनका न तो विचार ही करता है और न उनके अनुसार कार्य ही करता है वह जलमें रहनेवाले सांपके समान है जिसके न तो मणि ही होती है और न विष ही होता है अर्थात् जिस प्रकार माणि और विषहीन सांपकी सांप पर्याय निरर्थक है उसी प्रकार सुवचनोंके अनुसार न चलनेवाले पुरुषका सुवचन सुनना या जानना निरर्थक है। २ चतुर, स्याना ३ आगि।

कहा भी है—

"कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनालयो वा ।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥"

चौपाई—नीति सिंहासन बैठो वीर, मतिश्रुत दोऊ राखि वजीर ।
जोग अजोगह करो विचार, जैसै नीति नृपति व्योहार ॥
जो चरचा चितमें नहि चढै, सो सब जैनसूत्रसों कढै ।
अथवा जे श्रुतमरमी लोग, तिन्है पूछ लीजे, यह जोग ॥
इतनेमें संशय रहिजाय, सो सब केवलमांहि समाय ।
यों निशल्य कीजे निजभाव, चरचामें हठको नहि दाव ॥

दो॰—वचनपक्षमें गुण नहीं, नहि जिनमतको न्याय। ऐंच खैंचसौं प्रीतिकी डोर टूट मत जाइ ॥
ऐंच खैंचसों बहुतगुन टूटत लगै न वार। ऐंच खैंच विन एक गुन नहि टूटै निरधार ॥
वचन पक्ष परवत कियो, भयो कौन कल्यान ? वसु भूपति हू पक्षकरि, पहुचौ नरक निदान ॥
वचन पक्ष करिवो बुरो जहां धर्मकी हांन। निज अकाज परको बुरो जरो जरो यह बान ॥
प्राकृत बानीसों मिलै सो संस्कृत दृढ़ जान। मिलै संस्कृतपाठसों सो भाषा परमान ॥
बालबोध भाषा वचन उपगारी अभिराम। शास्त्र साक्षि जहं चाहिये तहां न आवै काम ॥

१—कलिकाल और श्रोताका खोटा आशय और वक्ताका अधिक बोलना ये हे जिनेंद्र! तुम्हारे शासनके एकाधिपतित्वकी चिन्हभूत जो प्रभुताशक्ति है उसके अपवादके कारण हैं अर्थात् इन वातोंसे जीवोंको भ्रम हो जाता है ।

चौपाई—सत्यारथ चरचा जे ठीक, भरमभावसों भई अलीक।
बहुत बात अजथारथ चली, यह निहचै जानों बुधिवली ॥
वक्ता वचनपक्ष गह रहै, श्रोता हठ छोडन नहि कहै।
कैसें चले जथारथ रीति, कलिवर्तन दीसै विपरीति ॥
जिनमत चरचा अगम अपार, को है तिनको जाननहार।
तिनमेंकी कछु सुधि करलेहि, आगे और खोज चित देंहि ॥
जाननजोग लियो हम जान, तहां हमारे हद सरधान।
यही सही समकितको अंग, काहे करें और श्रुत संग ॥
तृपतिभये वरते इहि भाइ, किधों रहे पंचामृत खाइ।
जिनमतकी ऐसी नहि रीत, तातें खोजी रहो पुनीत ॥
खोज किये गुण होइ विशेष, वाद किये गुनको नहि लेश।
पूछतडा नर पंडित होइ, जागतड़ा नर मुसैं न कोइ ॥
सोरठा—याहीतें सब कोइ, ग्वालवालभी कहत हैं, खोजी जीवै जोइ वादीको जीवन विफल ॥
चौपाई—जो तुम नीकै लीनों जान, तामें भी है वहुत विजान।
तातें सदा उद्यमी रहो, ज्ञानगुमान भूलि जिन गहो ॥
जो नवीन चरचा सुन लेहु, ताकों तुरत धका मति देहु।
दोय चार दिन करो विचार, एकचित्तकरि वारंवार ॥

यामें कहा दोष है मीत, विनयअंग जिनमतकी नीत।
आज्ञाभंग है पाप विशाल, मूरख नरके भासै ख्याल ॥
सम्यक्दृष्टी जीव सु जान, जिनवर उक्ति करै सरधान।
अजथारथ सरधा भी करै, मंदज्ञानजुत दोष न धरै ॥
सूत्र सिद्धांत साख जब होइ, सत सरधान दिढ़ावै कोइ।
जो हठसौं नाही सरधहै, तबसौं जानि मिथ्यात्वी कहै ॥

गोमट्टसारमें भी कहा है—

"सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि। सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥
सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि। सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदा पहुइ ॥"

दोहा—जैनसूत्रकी साखसों स्वपरहेत उर आन। चरचा निर्नय लिखत हैं कीजो पुरुष प्रमान ॥

ग्रन्थ लिखनेका हेतु—

इह चरचा समाधान ग्रंथविषै केतेक संदेह साधर्म्मी जनौंके लिखे आए, शास्त्रानुसार तिनका समाधान हुवा है सो लिखा है। अब जो बहुश्रुत सज्जन गुणग्राही हैं तिनसूं मेरी विनती है इस ग्रंथकौं पढ़वेकी अपेक्षा कीजो, आद्योपांत अवलोकन करियो। जो चरचा तुम्हारे विचार कौं सद्दहै सो प्रमाण करसो, जो विचारमें न सद्धहै तहां मध्यस्थ रहना और जैनकी चरचा

१ जिनेंद्र भगवान के उपदिष्ट तत्त्वों का जो श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि है। अपने विशेषज्ञान न होनेसे अन्य जैन गुरु द्वारा मंदमति वश बतलाये हुये असत् पदार्थका श्रद्धान करलेने से भी सम्यग्दर्शन में दोष नहीं लगता। परंतु विशेषज्ञानी द्वारा शास्त्र साक्षी पूर्वक बतलाने पर भी जो असत्पदार्थ का श्रद्धा नहीं छोडता वह उसी समयसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है। जीवकांड ॥ २७ ॥ २८ ॥

दोय प्रकार है—एक स्वजीव, दूजौ पर जीव। स्वजीव कहिये निजात्म, पर जीव कहिये सब जीव। तातैं आत्माकौं जीवतत्व कहिए। जीवतत्वकौं आत्मा न कहिये। जैसे द्रव्यकौं तत्व कहिये पदार्थ कहिए। तत्व पदार्थकौं द्रव्य न कहिये अथवा आचार्य्य उपाध्यायकौं साधु कहिये, साधु पदको आचार्य्य उपाध्याय पद न कहिये। इत्यादि आत्मतत्वविषै जीवतत्वविषै अैसे दृष्टांत जानने। मिथ्यादृष्टी केवल आगमज्ञान सौं जीवादि सप्ततत्वका यथावत् स्वरूप जानै, श्रद्धान कर स्वसंवेदन ज्ञानका अभाव है निजात्माके श्रद्धानका अनुभव होइ नाही, ताहीतैं आत्मज्ञान-शून्य पुरुषकै तत्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाही ॥ २ ॥

चरचा ३—व्यवहार सम्यक्त्व कैसैं कहिए और निश्चय सम्यक्त्व कैसैं कहिये ?

समाधान—आत्मतत्व विना जो जीवादि तत्वका श्रद्धान होइ तिसकूं व्यवहारसम्यक्त्व कहिए। तिस सहित निश्चय सम्यक्त्व है ॥ तदुक्तं रत्नत्रयपूजायां श्लोकः—

"शुद्धबुद्धस्य चिद्रूपादन्यस्याभिमुखी रुचिः। व्यवहारेण सम्यक्त्वं निश्चयेन चिदात्मने ॥"

अर्थः—'या रुचिः शुद्धचिद्रूपात् अन्यस्याभिमुखी भवति।' जो रुचि अपने निर्मल ज्ञानमय चैतन्यरूपआत्मा तैं और जीवादि पदार्थ के सन्मुख रुचि होइ 'तत् व्यवहारेण सम्यक्त्वं भवति।' सो व्यवहार सम्यक्त्व होइ। 'पुनः आत्मनः अभिमुखी रुचिः तत् निश्चयेन सम्यक्त्वं भवति।' और पूर्वोक्त अपने आत्माके सन्मुख रुचि होइ तिसै निश्चय सम्यक्त्व कहिये।

भावार्थ—अभव्य मिथ्यादृष्टि साधु ग्यारह अंग तांई पढै। भव्य मिथ्यादृष्टि साधु ग्यारह अंग दश पूर्व तांई पढै। जीवादि तत्वकौं यथावत जानै, अपने सुकार्य आत्माका अनुभव करै

अपार है काल दोषसौं तथा मतिश्रुतकी घटतीसों तिनविषै संदेह बहुत पड़ै तिसतैं तिनका कहा तांई कोई निर्णय करैगा ? चतुर्थकालविषैं छठै साते गुणस्थानवर्ती साधुकै पद पदार्थकै चिंतवनमैं भ्रांति उपजै केवली श्रुतकेवली विना निर्णय न होइ तौ अबकी कौन बात है ? तातैं यथायोग्य अवलोकन विना मनके अवलंबन निमित्त केतिक चरचाका विचार लिखिए है–

चरचा पहिली–मुनिराजके ऐसा कौन संदेह हुवा होइ तिसका केवली श्रुतकेवली विना निर्णय न होइ, तिस संदेहकी जाति जानी चाहिये ।

समाधान– केवलसमुद्घातविषै संकोच विस्तारके आठ समय कहे हैं तहां दोय समय औदारिकयोग है । तीन समय औदारिक मिश्रयोग है, तीन समय कार्माणयोग, होय है । अर दूसरे सिद्धांतमें दोय समय औदारिकयोग, दोय समयमें औदारिकमिश्र है, चार समय कार्माण है । इस प्रकार आठ समयका कथन है । ऐसी जातिके संदेहका केवली विना निर्णय न होइ, इस का विस्तार यथावसर आगैं लिखियेगा ॥

चरचा दूसरी–सम्यक् दर्शनका क्या स्वरूप है ?

समाधान–जीवादि तत्त्वका यथावत सरधान का नाम सम्यग्दर्शन है सोई दशाध्याय सूत्रविषै निरूपण है "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं" इति ।

इहां कोई कहै–प्रवचनसार नामाग्रंथविषैं यौं कहा है–जीवादि तत्त्वका श्रद्धान आत्मज्ञान-शून्यपुरुषकैं कार्यकारी नाही, इह कहने मैं तत्त्वार्थ श्रद्धानका निषेध आया सो क्या जीवादि तत्त्वार्थ श्रद्धानविषै आत्मज्ञान आया नाही। तिसका उत्तर–जीवादि सात तत्त्वनिकेविषै जीवतत्त्व

नाहीं, तातैं तिनकै निश्चय सम्यक्त्व न कहिये, व्यवहारसम्यक्त्व कहिये और अज्ञान सम्यक्-दृष्टी जीव तुष माष मात्र ज्ञानयुक्त अपने शुद्ध चैतन्य मात्र आत्माकों अनुभवै तिसै सम्यक्-दृष्टि कहिये। निश्चय सम्यक्दृष्टीकैं व्यवहार यथायोग्य होइ। व्यवहार सम्यग्दृष्टीकै निश्चय सम्यक्त्व होइ, न भी होइ। यह व्यवहार निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप जानना॥ ३॥

चरचा चौथी ४—सम्यक्त्वकी उत्पत्ति दोय प्रकार है—एक निसर्गतैं, दूजी अधिगमतैं। तिनका स्वरूप क्या है?

समाधान—निसर्ग कहिये स्वभावतैं होइ तिसैं निसर्गसम्यक्त्व कहिये। अधिगम कहिये अर्थ बोधतैं होइ तिसै अधिगम सम्यक्त्व कहिये। इहां कोउ पूछै—जो सम्यक्त्व स्वभावतैं उपजै तिसविषैं अर्थ विबोध होइ कि नाहीं, अर्थ विबोध न होइ तो तत्वश्रद्धान कैसे हुआ। अर्थ विबोध कहोगे तो अधिगम ही हुआ। भेद काहेका कहौ?

तिसका उत्तर—दोनो प्रकारके सम्यक्त्वविषैं अंतरंग कारण दर्शनमोहका उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय समान है। बाह्य कारणमें दोय भेद हैं। परंपराय गुरुके उपदेशसौं अर्थावबोध होइ सो सम्यक्त्व निसर्गतैं हुवा कहिये। साक्षात् गुरुके उपदेशसों अर्थाविबोध होइ तिसै अधिगमतैं हुवा कहिये। इह निर्णय गोम्मटसारजीके उत्तरार्द्धमें है। तिसका वर्णन—

क्षयोपशमादि पांचौ लब्धिकी प्राप्ति विना कदाचित् सम्यक्त्व होइ नाहीं। प्रथम क्षयोपशमलब्धिसौं पंचेंद्री सैनी पर्याप्त होइ। विशुद्ध लब्धिसौं पुण्यवंत जोग्य भाव होइ, देशनालब्धिसौं जैन गुरुके उपदेशसों अर्थावबोध होइ, प्रयोगलब्धिसौं आयुविना सातकर्मनिकी मध्यम

स्थिति अंतःकोडाकोडी सागर राखै, करणलब्धिसों प्रति समय परिणाम अनंतगुणे निर्मल होंइ तब अनादि मिथ्यात्वी अनिवृत्तिकरणके अंतसमयविषै अनंतानुबंधीके चतुष्क और मिथ्यात्वका उपशम करै प्रथम समय, तिसके अनंतर समयविषैं सम्यक्त्वकौं पावै। इस प्रकार पंचलब्ध परिणामनिकरि जीवकौं सम्यक्त्वकी प्राप्ति होइ । आदि चारि लब्धि तौ भव्य अभव्यकैं समान हैं। पंचमी करणलब्धि मिलै तब सम्यक्त्व होइ।

इहां कोई प्रश्न करै–सम्यक्त्व तो चारो गतिमें उपजे सातौं नर्क ताई बनै नाही। तीसरे नर्कताई देवता जांइ, तहां ताई तो गुरुके उपदेश सौं देशनालब्धि संभवै, आगें कैसै होइ ? तिसका उत्तर—

कोई जैनकुलमैं शोक क्रियाके आचरण करि नरक गये होंइ, तहां पूर्वजन्मका उपदेश स्मरण करैं इस परंपराय उपदेशसों अर्थावबोध होइ ऐसैं देशनालब्धि संभवै । साक्षात् गुरुके अभावतैं अधिगम सम्यक्त्व न कहिये, निसर्गतैं सम्यक्त्व कहिये।

चरचा पांचवी ५–पांच लब्धिमें करणलब्धिका क्या स्वरूप है ?

सामाधान—करण नाम परिणामोंका है। तिनकी लब्धि होइ तिसै करणलब्धि कहिये। तिसके तीन भेद–अधःकरण १ अपूर्वकरण २ अनिवृत्तिकरण ३ । इनके भावहीमैं इनका अर्थ है। ताहीतैं इनकी अर्थपदी संज्ञा है। प्रथम अधःकरण चौथी प्रयोगलब्धिके अनंतर ही होइ, तिसका अंतर्मुहूर्त्त काल है। तिसके असंख्य समय हैं। तहां प्रथम समयविषै विशुद्ध परिणाम होंइ ते ही दूसरे समय विषै हो हैं तथा और अनंत गुणे निर्मल हो हैं। बहुरि दूसरे समय-

संबंधी जे परिणाम थे ते ही तीसरे समय हो हैं तथा और निर्मल हो हैं। या प्रकार अधःकरणके चरम समय पर्यंत हो हैं। यह प्रथम अधःकरण परिणामपंकतिकी रीति जाननी, यहां ऊपरले समयके परिणाम नीचले समय संबंधी परिणामनिकी बराबरी होंइ। याहीतैं इसकी अधःकरण सार्थक संज्ञा है। तथां चोक्तं गोम्मटसारे श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिभिः। गाथा—

जह्मा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सारिसगा होंति। तह्मा पढमं करणं अधापवत्तोति णिद्दिट्ठं ॥४८॥

जीवकांड।

दूजे अपूर्वकरणविषैं प्रथम समयके परिणामोंतैं दूसरे समय विषै अनंतगुणे निर्मल होंइ। अधःकरण की नाईं नीचले भावोंकी बराबरी न होंइ—प्रति समय अपूर्व ही अपूर्व होंइ ताहीतैं इसकी अपूर्वकरण संज्ञा है। इसका भी अंतर्मुहूर्त काल है।

तीसरे अनिवृत्ति करण कालविषै एक समयवर्ती अनेक जीव होंहि, तिनके परीणामविषै अनिवृत्ति कहिये भेद नाहीं यह अर्थ सिद्धांत विषै लिख्या है। याहीतैं अनिवृत्तिकरण संज्ञा है। जैसैं अनिवृत्तिकरणवर्ती जीव संस्थान वर्ण वय वेष अवगाहनादि करि परस्पर भिन्न रूप हैं तैसैं अपने अपने परिणामों करि भेदवंत नाहीं, सब एकसे हैं।

इहां कोई कहै—हम तो सुनी है किस ही जीवके परिणाम किसही सों मिलै नाहीं। इह क्यों करि बनै?

१ यही बात श्रीगोम्मटसारजी ग्रंथमें जीवकांडकी ४८ वीं गाथामें श्रीमान् नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ति महाराजने कही है। देखो भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था कलकत्ताके छपे गोम्मटसारजी पृष्ट १००।

तिसका उत्तर—संसारवर्ती जीवके परिणाम असंख्यात लोक मात्र हैं और जीवराशि अनंतानंत है। जो परस्पर जीवनिके परिणाम मिलैं नाहीं तौ असंख्यातलोकमात्र परिणाम कैसें सिद्ध होंइ ? और कहासूं आवैं ? यातैं अनंत जीवनिके परिणाम परस्पर मिलैं तब असंख्यात लोक मात्र परिणाम सिद्ध होंइ। इस अनिवृत्ति करणका काल भी अंतर्मुहूर्त जानना ए तीनू मिथ्यात्व ही में होंइ। इनही तीनो करणका स्वरूप श्रीजिनसेनाचार्यने आदिपुराण विषै भलीभांति कह्या है सो भी विचारना।

"करणप्राययाथात्म्यव्यक्तयेऽर्थपदानि वै। ज्ञेयानि मुनिशार्दूलसूत्रार्थसद्भवक्रमात् ॥
करणपरिणामा ये विभक्ताः प्रथमक्षणे। ते भवेयुर्द्वितीयेऽस्मिन् क्षणे नैव पृथग्विधाः ॥
द्वितीयक्षणसंबंधिपरिणामकदम्बकं। तच्चान्यच्च तृतीयेस्यादेवमाचरमक्षणात् ॥
ततश्चाधःप्रवृत्ताख्यं करणं तन्निरुच्यते। अपूर्वकरणे नैवं ते ह्यपूर्वाः प्रतिक्षणात् ॥
करणे त्वनिवृत्त्याख्ये न निवृत्तिरिहांगिनां। परिणामे मिथस्ते हि समभावाः प्रतिक्षणं ॥"

चरचा ६—गोम्मटसारजीमें सम्यक्त्वके छ भाग कहे हैं—मिथ्यात्व सम्यक्त्व १ सासादन सम्यक्त्व २ मिश्रसम्यक्त्व ३ उपशमसम्यक्त्व ४ क्षमोपशम सम्यक्त्व ५ और क्षायिक सम्यक्त्व ६ इन छहू सम्यक्त्वका स्वरूप क्या है ?

तिसका समाधान—सम्यक्त्व नाम रुचि तथा श्रद्धानका है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें अतत्व रुचि होइ तिसे मिथ्यात्व सम्यक्त्व कहिये। इहां कोई कहै—मिथ्यादृष्टि आगम ज्ञानके बल जीवादि तत्वका यथावत् श्रद्धान करै तिसकैं अतत्वरुचि क्यों कही जाय ? तिसका उत्तर—

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आत्मज्ञान शून्य रुचि होइ तातैं तिसै अतत्वरुचि कहिये । जैसै अशुचि पात्रमें धरा गायका दूध अशुचि कहावै अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानकेविषै मति श्रुति दोऊ कुमति कुश्रुति कहावैं तैसैं ही मिथ्यात्वगुणस्थानमें जो रुचि होइ तिसै अतत्व रुचि कही, इह मिथ्यात्व सम्यक्त्वका स्वरूप है ।

दूजे सासादन सम्यक्त्वका स्वरूप—कोई अनादि मिथ्यात्वी चौथे पांचवे सातवे गुण स्थान जाइ छठे आवै तहां अनंतानुबंधीके अन्यतमोदयतैं मिथ्यात्वके सन्मुख होइ एक समयसौं लेकर छह आवली पर्यंत अंतरालवर्ती रहै तहां सासादनगुणस्थानकेविषै सासादन सम्यक्त्व कहिये। इहां कोई पूछै—सासादन सम्यक्त्वके विषैं तत्वरुचि है? कै अतत्व रुचि है? कै उभयरुचि है? कै कोई रुचि नाही? जो तत्व रुचि कहिए तौ चौथा गुणस्थान हुआ, अतत्व रुचि कहोगे तौ प्रथम गुणस्थान हुआ, उभय रुचि कहागे तौ तीसरा गुणस्थान हुआ, दोऊ रुचिमैंतैं कोई न कहोगे तौ आत्माकैं श्रद्धान गुणके अभावतैं आत्माका अभाव हुआ । जातैं गुणका अभावतैं द्रव्यका अभाव होइ है। इसका उत्तर—

जहां तत्वरुचि गई तहां अतत्वरुचि ही होइ, जातैं सासादन गुणस्थानकविषै अव्यक्त अतत्वरुचि है मिथ्यात्वविषैं व्यक्त जाननी ॥ तीसरा मिश्र सम्यक्त्वका स्वरूप लिखिए है—

अनादि मिथ्यात्वी कै चौथा पांचवां छठा सातवां इन च्यार गुणस्थानकविषैं, तथा सादि मिथ्यात्वीकै मिथ्यात्व गुणस्थान विषै दर्शनमोहकी सम्यक्त्व–मिथ्यात्व नामा दूसरी प्रकृति उदै आइ जाय तिस प्रकृतिके उदयतैं एक ही काल अंतर्मुहूर्तमात्र सम्यक्त्व मिथ्यात्वरूप मिले परि-

णाम होंइ तिसे मिश्र गुणस्थानक कहिए। तिस विषे जो भाव होइ तासूं मिश्र सम्यक्त्व कहीए। पूर्व मिथ्यात्वसंबंधी अतत्व श्रद्धानका त्याग हुवा है तिस समय तत्वश्रद्धान होइ यह मिश्र भाव का स्वरूप है। इसका नाम मिश्र सम्यक्त्व है। जैसें दही गुड मिलाय खाय, तौ एक एकका जुदा जुदा स्वाद न लिया जाइ तैसें मिश्रसम्यक्त्वके भाव जानने॥ इहां कोऊ पूछे— मिश्रसम्यक्त्व के तत्व श्रद्धान अतत्व श्रद्धान रूप मिले भाव हैं ते मिथ्यात्वके भाव हैं सम्यक्त्वके भाव हैं यातैं इसकों सम्यक्त्व संज्ञा है। सासादन वाला तौ सम्यक्त्व सूं गिरा है, अव्यक्त अतत्व श्रद्धानी है मिथ्यात्व वाला व्यक्त अतत्त्व श्रद्धानी है इन दोऊनिके सम्यक्त्वका सद्भाव नाहीं, तिसतैं इनके भावकूं सम्यक्त्व संज्ञा भी कैसै हुई ? तिसका उत्तर—

आत्माका रुचि तथा श्रद्धान रूप सम्यक्त्वनामा घरू निंज स्वभाव है सो अनादि है। अपने स्वरूपसौं भ्रष्ट मिथ्यात्वरूप हुआ—अतत्वरुचिमें वर्तै है, नाश नाहीं हुवा और रूप हुवा है तिसतैं गुणस्थानके अनुसारि दोऊनिकौं सम्यक्त्व संज्ञा कही। जैसे राजभ्रष्ट राजाकौं राजा ही कहिये॥

चौथे उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप लिखिये है—कोई अनादि मिथ्यात्वी पंचलब्धिकौं प्राप्त हुआ अनिवृत्ति नाम तीसरे करणके चरम समयविषै अनंतानुबंधी क्रोधादिकी चौकडी और मिथ्यात्व इन पांचौ प्रकृतिनिका उपशम कर उदयकूं अयोग्य करै तब उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होइ, जैसै निर्मलीके योगतैं कादों नीचै बैठि जाय तब नीर (पानी) निर्मल होइ। तैसें कर्म प्रकृति के अनुदयतैं जीवकैं निर्मलता होइ, यह उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप है॥ इहां कोऊ

पूछै—सात प्रकृतिके उपशमसौं उपशमसम्यक्त्व प्रसिद्ध हैं । इहां पांच प्रकृतिके उपशमसौं लिखा सो कैसे ? ताका उत्तर—

सात प्रकृतिके उपशमसौं उपशम सम्यक्त्व होइ है सो यहु कथन सादि मिथ्यात्वीकी अपेक्षा है। जातैं सादि मिथ्यात्वीकै तीनो मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चतुष्क इन सातौ प्रकृतिनिके उपशमसौं उपशम सम्यक्त्व होइ, अनादि मिथ्यात्वीकैं एक मिथ्यात्व की सत्ता हैं इहां सातका उपशम कहांसौं करै ? जातैं अनंतानुबंधी चतुष्क और एक मिथ्यात्व इन पांचोंका उपशमकरि उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति होइ। यह विशेष श्रीगोम्मटसारके उत्तरार्द्धमें जानना। जब इह अनादि मिथ्यात्वी चोथे पांचवे तथा छठे सातवे गुणस्थान चढै है तब इहां अंतर्मुहूर्त्त काल विषै मिथ्यात्वके तीन खंड करै है। तदुक्तं कर्मकाण्डमध्ये—

जंतेणं कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण। मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीनदव्वकमा ॥२६॥

याप्रकार दोय प्रकृतिकी सत्ता वढाइ मिथ्यात्वके उदयतैं मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती होइ, सादि मिथ्यात्वी कहावै फेरि जब यह उपशम करै तब सातो प्रकृतिका उपशमकर उपशमसम्यग्दृष्टि होइ। तहांभी एक तारतम्य है—सादि मिथ्यात्वी मिथ्यात्व गुणस्थाने कदाचित् दोनों मिथ्यात्वकी उद्वेलना करै—और प्रकृतिमें मिलायके खिराइ देइ तौ फेरि एक ही मिथ्यात्वकी सत्ता रहिजाय,

१ जैसै कोदों धान्यविशेष दलनेपर भुसी तंडुल और कन ऐसे तीन रूप होजाता है उसी तरह मिथ्यात्वरूप कर्म द्रव्य भी उपशमसम्यक्त्वरूपी यंत्रके द्वारा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीनस्वरूप परिणमन करता है।

तब फेरि भी पूर्वोक्त पांच प्रकृतिका उपशम अनादि मिथ्यात्वीवत् करै इस प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी रीति है ॥

पांचवे क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप लिखिये है—कोई उपशमी पांचवे चौथे छठे सातवे गुणस्थानवर्ती तिसके सम्यक्त्वप्रकृतिनाम दर्शन मोहकी तीसरी प्रकृतिका उदय आवे तब वेदक सम्यक्त्व होइ इसही का नाम क्षयोपशम सम्यक्त्व है। भेद बहुत है। इहां कोऊ पूछै—क्षयोपशमका अर्थ क्या है ? तिसका उत्तर—

जो कर्म जीवोंके प्रदेशोंपर च्यार च्यार प्रकार बंधरूप सत्तालिये तिष्ठै है सो प्रकृति प्रदेश स्थिति बंधरूप सत्ता ज्योंकी त्यों रहे तिस बंधके अनुभागका यथायोग्य अभाव होइ तिसै उदयाभाव क्षय कहिये। उदयकौं अयोग्य सत्ता रही तिसे उपशम कहिये, उदयाभावरूप क्षय समेत उपशम होइ तिसे क्षयोपशम कहिये। इह क्षयोपशमका अर्थ सर्वत्र जानना। इहां कोऊ पूछै—उदयाभावकूं क्षयसंज्ञा कही और उपशममें भी उदयाभाव ही आया, इन दोऊमें विशेष क्या ? तिसका उत्तर—

उपशमके उदयाभावका काल जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है। उपशम सम्यक्त्व जबताईं रहै तब ताईं यथाख्यात होइ परंतु सातवे छठे गुणस्थानवत् मिथ्यात्वविषै आवागमन चल्या जाय ऐसी उपशमकी परिणति है। अर क्षयोपशमके उदयाभावका काल जघन्य अंतर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट छ्यासठ सागर, यातैं इस उदयाभाव की क्षयसंज्ञा है।

छट्ठे क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखिये है—अनंतानुबंधी चौकडी ४ दर्शन मोहकी ३ इन सातों प्रकृतिनिका केवली तथा श्रुत केवलीके निकट क्षय होइ, प्रकृति प्रदेश स्थिति अनु-

भागबंधरूप सत्ता रहे नहीं तिसे क्षायिक सम्यक्त्व कहिये। स्फटिक मणिके पात्रमें निर्मल जलवत् जानना। पूर्वोक्त सात प्रकृतिका क्षय चौथे ४ पांचवें ५ छठे ६ सांतवे ७ गुणस्थान ताईं होइ। तीन दर्शन मोहके क्षयसों अनंतानुबंधीका क्षय होइ । क्षीणे दर्शनमोहे इति वचनात् । दर्शन मोहके क्षयविना अनंतानुबंधीकी विसंयोजना होय, क्षय न होइ। यह नियम है। यह छह प्रकार के सम्यक्त्वका संक्षेप स्वरूप जानना।

अब इन छहो सम्यक्त्व के छह गुणस्थान लिखिये है—मिथ्यात्व गुणस्थाने मिथ्या सम्यक्त्व, सासादन गुणस्थाने सासादन सम्यक्त्व, मिश्रगुणस्थाने मिश्रसम्यक्त्व, चौथेगुणस्थानसौं लेके सातमे ताईं उपशमादि तीनौं सम्यक्त्व हैं। चौथे सौं लेके ग्यारहवें ताईं उपशमश्रेणीविषै उपशम क्षायिक दोइ सम्यक्त्व हैं। क्षपकक्षेणीविषै आठवेसौं ऊपर चौदहताईं एक क्षायिक सम्यक्त्व है इहां एक कोइ और प्रश्न करै—कोई वेदक सम्यग्दृष्टि साधु सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानविषैं अनंतानुबंधीकी विसंयोजना करै, तीन प्रकार दर्शन मोहका उपशम करै, उपशम श्रेणी चढै, ग्यारहवे गुणस्थान पर्यंत पहुंचै तिसै कौन सम्यक्त्व कहोगे? क्षयोपशम कहोगे तो इसकी सरहद सातवे ताईं रहै ए ग्यारहवे ताईं पाइए है। तिसका उत्तर—इह द्वितीयोपशम है तातैं उपशम कहिये।

चरचा सातवीं ७—उद्वेलना तथा विसंयोजना विषै क्या फेर है?

समाधान—मूल प्रकृतिकी उद्वेलना तथा विसंयोजना होती नाहीं। जो आगमोक्त उत्तर प्रकृति अपने रूप खिरै नाहीं, परप्रकृतिमें मिलके खिरजाइ, फेरि सत्तामें न पाइए तिसे उद्वेलना

कहिये। और जो उत्तर प्रकृति सो जातीय प्रकृतिमें मिल जाइ तिसे विसंयोजना कहिये। जैसे अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यान आदिमें मिलै। विशेष इतना—उद्वेली प्रकृति फेरि बंध किये विना उदय आवै नाहीं। विसंयोजनावाली उदय आवै।

चरचा आठवीं ८—कोई जीव उपशमश्रेणी चढै तौ कै वार चढै?

समाधान—अर्धपुद्गलावर्त्त कालविषै उपशमश्रेणी उत्कृष्ट च्यारि वार चढै फेरि मुक्त होइ जाइ अर एक जन्मविषै दोइ वार चढै।

चरचा नौमी ९—अंतर्मुहूर्तके कितने विकल्प हैं?

समाधान—एक आवली एक समयकौं जघन्य अंतर्मुहूर्त्त कहिए, एक समय घाटि मुहूर्त्तकौं उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कहिये तथा भिन्न मुहूर्त्त कहिये। मध्यके असंख्य भेद जाननें।

चरचा दशमी १०—अवलीका क्या स्वरूप है?

समाधान—एक मुहूर्त्तके सैंतीससौ तिहत्तर स्वासोच्छ्वास होइ हैं, एक स्वासोच्छ्वास विषैं कोडाकोडि आवलीतैं कछु अधिक ही होंइ। इहां कोउ कहै—हम तौ अंगुलिके आवर्तकौं आवलि नाम जानै हैं इह काल तौ बहुत थोड्या हुआ। तिसका समाधान—

"आंवलि असंखसमया संखेज्जावालि हवेइ उस्सासो" इति वचनात् आवलीके असंख्यात समय कहे अर असंख्यात आवलीका एक श्वासोच्छ्वास कह्या। तिस असंख्यातके असंख्यात भेद हैं। तौ इहां असंख्यात कौनसा है इसका भी तौ भेद जाना चाहिये। सो इस भेदका विशेष श्रीवसुनंदिसिद्धांतचक्रवर्तीने मूलाचारमें लिखा है।

१ गोम्मटसारजी जीवकांड २१३वी गाथा देखो।

चरचा ग्यारहवीं ११—क्षपक श्रेणीवाला नवमे अनिवृत्तिकरण नामा गुणस्थानविषैं नव भागकरि छत्तीस प्रकृतिका क्षय करै है। तिनमें सूक्ष्म लोभ विना वीस प्रकृति चारित्रमोहकी हैं, थावर आदि तेरह प्रकृति नामकर्मकी हैं, तीनूं बड़ी निद्रा दर्शनावरणकी हैं। ए छत्तीस भईं। और जो उपशम श्रेणी चढै सो नवमे गुणस्थान विषैं उपशम केती प्रकृतिका करै? ब्रह्मविलास के चेतनचरित्रविषैं छत्तीसका ही उपशम लिख्या है सो कैसैं है?

समाधान—क्षपक श्रेणीवाला छत्तीस प्रकृतिका क्षय करै इह तौ प्रमाण है। और उपशम श्रेणीवाला उपशम चारित्रमोहकी इकीस प्रकृतिका करै—अप्रत्याख्यान चतुष्क ४, प्रत्याख्यान चतुष्क ४, संज्वलन चतुष्क ४, हास्यादि नव ९, ए इकीस हुई। मोहनीयकर्म विना और किसी कर्मका उपशम होइ ही नाहीं यह नियम है। तातैं छत्तीस प्रकृतिका उपशम क्योंकर संभवै यह प्रश्न (कथन) स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाविषैं देखना।

चरचा बारमी १२—अविरत नाम चतुर्थ गुणस्थानकी केतेक काल स्थिति है?

समाधान—जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट तेतीस सागर कुछ अधिक है। तदुक्तं—

"छावलिया सासाणं समहियतेतीस सायर चउत्थे"

अर्थ—सासादनस्य षडावलिका—सासादन नाम दूजे गुणस्थानकी छह आवली उत्कृष्ट स्थिति है। चतुर्थस्य साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरः—चौथे अविरत नामा गुणस्थानकी किछू अधिक तेतीस सागर है। सो कैसें हैं? कोई कर्मभूमिका मनुष्य महाव्रती सर्वार्थसिद्धि जाइ तीन समय अंतरालवर्ती रहै तहां देवगतिके उदय अविरत गुणस्थान जानना, तेतीस सागरकी आयु पर्यंत

अव्रत गुणस्थान रहै जब ताईं फेर कर्मभूमिका मनुष्य होइ आठवर्षके अनंतर संयम धरै तब ताईं अव्रत गुणस्थान कहिये या प्रकार तेतीस सागर किछू अधिक है। इहां कोऊ कहै—हम तो तेतीस सागरकी अव्रत गुणस्थानकी स्थिति सुनी है, अधिक नाहीं सुनी। बनारसीदासजीने भी समयसार नाटकमें यही कही है। सो क्योंकर है ? तिसका उत्तर—पूर्वोक्त चौवीस ठाणेकी गाथाका अर्थ भली भांति विचार लेना।

चरचा तेरमी १३—छट्ठा सातवां गुणस्थान डवरूंकी नाईं हुवा करै है तहां ऐसैं सुना है—जब छट्ठेसूं सातवें आइ जाइ तब गमन करतैं पांव ज्योंका त्यों ही रहै, आहार करतैं ग्रास ज्यों का त्यों ही रह जाइ, सो कैसै हैं ?

समाधान—छट्ठा सातवां गुणस्थान उपशम सम्यक्त्व की नाईं उत्पन्न प्रध्वंसी है। अर इन दोनों गुणस्थानका काल जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त मात्र है। तिस अंतर्मुहूर्त्तके भेद असंख्यात हैं। और इनके परिणामसंबंधी पलटनकी सहज परिणति ऐसी है वह बाह्य चिन्हसौं जानी न जाइ, चलते बैठते सोवते आहार करते छट्ठा सातवां गुणस्थान भावों करि हुवा करै है। जब संज्वलन कषायका उदय मंद होइ तब सातमों होइ जाइ, तीव्र उदय होइ छठा होइ जाइ। जब ताईं श्रेणी माढै नाईं तब ताईं ऐसैं ही हुवा करै। प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला अंतर्मुहूर्त काल विषै सातवे छठे गुणस्थानमें संख्यात सहस्र आवागमन करकैं सासादनवर्ती होइ है ऐसी कोई परिणामोंकी उछाल गति है। यातैं पांव धरते उठावते अथवा आहारका ग्रास लेते कई वार सातवेतैं छट्ठा होइ जाइ, छट्ठातैं सातवां होइ जाइ, तिसतैं आहार विहार की क्रिया रहि जाइ। इह क्यूं करि

संभवै ? अर ऐसैं न मानिये तौ साक्षात् निद्रा प्रमादके अवसर अप्रमत्त गुणस्थान मुनिराजके कैसैं संभवै ? अल्प निद्रा मुनिराजके यथावसर कही है हीं। यह विभाग विचार देखना ॥

चरचा चौदमी १४—छठवेसूं ग्यारहवें गुणस्थान ताईं उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र है अर एक समय मात्र भी कही है। वनारसीदासजीने नाटकके गुणठाणाधिकारमें भी कही है सो क्यूं कर है ?

समाधान—एक समय मात्र स्थिति मरणकी अपेक्षा सूं है कोई अप्रमत्तवर्ती जीव अपने आयु का एक समय वाकी रहैं प्रमत्तमें आय मरण करै इस अपेक्षातैं एक समय स्थिति हुई ऐसैंही अप्रमत्तकी तथा च्यारौं उपशमकी भी जाननी।

तिसका व्योरा—आठवे गुणस्थानमें पाहिले भागमें मरण नाहीं। निजायुका एक समय वाकी रहै नौमे गुणठाणे जाइ मरण करै इस अपेक्षातैं नमे गुणठाणेकी एक समय स्थिति हुई। ऐसैं ही दशवे तथा ग्यारहवेंकी भी है। आठवेंकी वाकी रही सो उतरती वार जाननी। च्यारो क्षपकमें मरण है नाहीं, तातैं उनकी स्थिति अंतर्मुहूर्त ही है।

इहां कोऊ कहै—प्रमत्तसूं लै उपशांतमोहताईं छहू गुणस्थानकी स्थिति मरणकी अपेक्षा समय मात्र कही, ऐसैं मिथ्यात्व गुणस्थानकी क्यूं न कहो ?

तिसका उत्तर—जो जीव सम्यक्त्व छोडि मिथ्यात्वमें आवै सो अनंतानुबंधीके अंतर्मुहूर्तमात्र उदयकाल पर्यंत मरण न करै है यहु नियम है। अर मिश्रगुणस्थानविषै मरणका अभाव

ही है। "क्षीणे मिश्रे सयोगे च मरणं नास्ति देहिनां" इति वचनात्। आगे अविरति तथा देशव्रतकी प्राप्तिविषैंभी अंतर्मुहूर्त्त ताईं मरण नाहीं, यातैं किसही गुणस्थानकी समय मात्र स्थिति मरणकी अपेक्षा न संभवे। यह कथन सूत्रजीकी टीका सर्वार्थ सिद्धि नामा है तहां जानना ॥ १४ ॥

चरचा पंद्रहवीं १५–सम्यक्त्व सहज साध्य है कि यत्न साध्य है?

समाधान–समयसारविषें श्रीअमृतचंद्रसूरिने सम्यक्त्व यत्नसाध्य बताया है। "पश्य षण्मासमेकं" इति वचनात्। इसप्रकार सम्यक्त्वकी प्राप्तिविषैं छह महीनेका वायदा किया तिसकी भाषा–एक छह महीना उपदेश मेरा मान रे। अर 'काललब्धि विना नहीं' यह भी प्रमाण है। तहां दोनूं कारणविषैं दृष्टांत कहिए है। जैसैं कोई धनार्थी पुरुष यथायोग्य उद्यम करै है, धनकी प्राप्ति भाग्य उदयसों होइ है तैसैं पूर्ण उपायसूं उद्यमी होना योग्य है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति काललब्धिसौं होयगी अर जिस कार्यकी लब्धि होनी है तिस कार्यकी सिद्धि उद्यम विना होनी नाहीं। जब होयगी तब उद्यमसूं होयगी यह नियम है जैसैं भरतजीके ज्ञानोत्पत्तिविषैं एक मुहूर्त्त बाकी रहा था तौ भी दीक्षा ग्रहण किया तब कार्य सिद्ध हुआ। इसप्रकार उद्यम कारण है। कारण विना कार्य सिद्ध होता नाहीं, यातैं उद्यमी रहना।

चरचा सोलहवीं १६–विद्यमान भरतखंडविषैं पंचमकालमें सम्यग्दृष्टि जीव केतेक पाइए?

समाधान–जिन पंचलब्धिरूप परिणामनिकी परिणतिकरि (विषै) सम्यक्त्व उपजै ते प-

---

१। क्षीणमोह बारहवां गुणस्थान, सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थान और मिश्र वा सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तीसरा गुणस्थान, इन तीनोंमें मरण नहीं होता।

रिणाम इस कलिकालमें महा दुर्लभ हैं। तिसतैं दोय तथा तीन तथा च्यारि कहे हैं। पांच छह तौ दुर्लभ हैं। इस कथनका साख स्वामिकार्तिकनुप्रेक्षाकी टीका विषै है। तथा च काव्यं—

"विद्यंते कति नात्मबोधविमुखाः संदेहिनो देहिनः
प्राप्यंते कतिचित् कदाचन पुनर्जिज्ञासमानाः कचित्।
आत्मज्ञाः परमप्रमोदसुखिनः प्रोन्मीलंदतर्दृशो
द्वित्राः स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पंचषा दुर्लभाः॥"
'ते संति द्वित्रा यदि, इति कथनात्।

अर्थ— इसकालमें घणे जीव अपनी स्वेच्छातें आपकौं सम्यग्दृष्टि मानै हैं तौ मानौ, परंतु शास्त्रविषै तौ तीन च्यारि ही कहै हैं अर पंचलब्धिका स्वरूप भली भांति जाना होइ तौ आपकौं सम्यग्दृष्टिका अनुमान भी न करै। कोई ऐसैं भी कहै हैं निश्चयकरि भगवान जानै, अनुमानसौं मेरे सम्यक्त्व है यह भी श्रद्धान मिथ्या है यातैं सम्यक्त्व अनुमानका विषय नाहीं।

चरचा सतरहवीं १७—परंतु शास्त्रकेविषैं या विना तौ कोई वस्तु न होइ यातैं सम्यक्त्वके वाह्य लक्षण शास्त्रविषैं क्यों न होंहिगे?

तिसका उत्तर—यशस्तिलकनामा काव्यविषैं पुरुषके च्यारि वाह्य लक्षण कहे, हैं, च्यारि ही सम्यक्त्वके कहे हैं स्त्री जनके संभोगकरि, बेटाबेटीके उपजावनेकरि, विपत्तिविषैं धीरजभावसूं, आरंभकार्यके निर्वाहसौं, इन च्यारि चिन्हनिकरि पुरुषकी अतींद्रिय पुरुष शक्ति जानी जाइ है तैसैं

ही शांत भाव, संवेग भाव, दया भाव, आस्तिक्य भाव इन च्यारि अव्यभिचारी भावनिसूं सम्यक्त्व रत्न जाना जाइ है। क्रोधादि रहित समभावकूं शांत भाव कहिए। कोमलतायुक्त भावनिकौं दया भाव कहिए। धर्म, धर्मके फलविषैं प्रीति होइ, तथा देह भोगसूं उदासीनता होइ, तिसै संवेगभाव कहिए। आप्तागम पदार्थनिविषैं नास्ति बुद्धि न होइ, तिसै आस्तिक्य भाव कहिये। ये च्यारौ भाव कभी व्यभिचरैं नाहीं, विकाररूप न होंइ, यह सम्यग्दृष्टिका बाह्य लक्षण कह्या।

चरचा अठारमी १८— दशाध्याय सूत्रके नवमे अध्यायकेविषैं दश पुरुष सम्यग्दृष्टी आदि परस्पर असंख्यातगुणी अधिक निर्जरावाले कहे हैं। तिनका स्वरूप क्या है?

समाधान—सम्यग्दृष्टि[1], श्रावक[2], विरत[3], अनंतवियोजक[4], दर्शनमोह क्षपक[5], उपशमक[6], उपशांतमोह[7], क्षायिक[8], क्षीणमोह[9], जिन[10], ए दशविधके पुरुष जानने। प्रथम ही प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पहिले करणत्रयके परिणामके चरम समयवर्ती विशुद्धिविशिष्ट मिथ्यादृष्टिके जो निर्जरा है तिसतैं असंख्यातगुणी निर्जरा चौथे गुणस्थानवाले अविरत सम्यग्दृष्टिके हैं। १॥ तिसतैं असंख्यातगुणी निर्जरा पंचम गुणस्थानवाले श्रावकके हैं॥ २॥ तिसतैं असंख्यात गुणी निर्जरा छठे सातवे गुण स्थानवाले विरतके हैं॥३॥ तिसतैं असंख्यातगुणी निर्जरा अनंतानुबंधी की विसंयोजनावाले अनंत वियोजकके हैं॥ ४॥

इहां कोऊ पूछे—जो कोई अनंतानुबंधी चतुष्ककौं अप्रत्याख्यानादि रूप करै तिसै अनंतवियोजक कहिये इसका गुणस्थान कौनसा?

---

१ प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्याद्यभिव्यक्तलक्षणं प्रथममिति सर्वार्थसिद्धिः॥ अ० १ सूत्र, २॥

समाधान

तिसका उत्तर—अनंतानुबंधीकी पूर्वोक्त विसंयोजना चौथे पांचवे, छठे, सातवे इन च्यारो गुणस्थान विषैं करै है। तिसतैं च्यारो गुणस्थानवर्ती अनंतवियोजक हैं। सो अपने गुणस्थानविषैं अपनी पूर्व निर्जरासौं असंख्यात गुणी करै है। परंतु इहां क्रमवर्ती कथनकी अपेक्षातैं विरतसैं असंख्यातगुणी निर्जरा जाननी।

अनंतवियोजकतैं असंख्यातगुणी निर्जरा दर्शनमोहके क्षपकके हैं। पाहिले अनंतानुबंधी की विसंयोजना करि, दर्शनमोहके त्रिककूं खिपावै इह क्रम है तिसै दर्शनमोहका क्षपक कहिये। इसका गुणस्थान छठा सातवां ही जानना। दर्शनमोहके क्षपकतैं उपशमककें असंख्यातगुणी निर्जरा है। इहां कोऊ पूछै—क्षपकके पीछै उपशमक क्यों कहा?

तिसका उत्तर—क्षपक नाम क्षायिकका है जातैं इन सात प्रकृतिनिका क्षय कीना है। उपशमक नाम द्वितीयोपशम सम्यक्त्वयुक्त उपशम श्रेणी वालेका है। चारित्र मोहके उपशम करनेकौं उद्यमी हुवा है। गुणस्थान इसके आठवां नवमा दशवां ए तीनों हैं। ६। उपशमकतैं असंख्यातगुणी निर्जरा उपशांत मोह ग्यारहवे गुणस्थानवालेके है। ७। उपशांतमोहतैं असंख्यातगुणी निर्जरा क्षपक कहिये क्षपकश्रेणी वालेके है। इसके गुणस्थान आठवेसूंले दशवे ताईं तीन जानने। ८। क्षपकतैं असंख्यातगुणी निर्जरा क्षीणमोह नामा बारहवे गुणस्थानवालेकै है। ९। क्षीणमोह वारेतैं असंख्यातगुणी निर्जरा जिनकें है। १०। जिन विषै तीन भेद हैं—स्वस्थानकेवली१ समुद्घातकेवली २, अयोगकेवली ३, तीनोंकै भी विशुद्धताके योगतैं उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी निर्जरा है। याहीतैं अत्यंत विशुद्धतासूं समुद्घातकेवली नाम गोत्र वेदनीय कर्मकी स्थिति आयु

के समान करै। इन दशों भेदनिविषै प्रतिसमय असंख्यातगुणी निर्जरा है ॥ १८ ॥

चरचा उगणीसवीं १९—केवलि समुद्धातके आठ समय हैं तिस विषैं त्रसनाडीके वाहिर जीवके प्रदेश कौनसे समय पाइये ?

समाधान—तेरहवे गुणस्थानके अंतमें आत्मप्रदेशनिकी प्रसरण संवरण रूप क्रिया आठ समय माहि होइ, तहां केवली जो कायोत्सर्गासन सहित होइ तो बारह अंगुल प्रमाण समवृत्त अथवा मूल शरीर प्रमाण समवृत्त, उपविष्ट होइ तो मूल शरीरतें त्रिगुणे मुटाई समेत तीनों वातवलयहीन लोकनाडी प्रमाण उर्ध्व दंडाकार आत्मप्रदेश प्रथम समय करै, इहां प्रदेश त्रसनाडी के वाहिर नाहीं गए, तदनंतर जो केवली पूर्वमुख होइ तौ दक्षिणोत्तरमें वातवलयहीन चौदहराजू ऊर्ध्वलोकके अंततांई आगमोक्त विस्तीर्ण दंड प्रमाण दल संयुक्त और उत्तर मुख होइ तौ पूर्व-पश्चिम मैं वातवलयहीन चौदह राजू ऊर्ध्व लोकके अंततांई आगमोक्त विस्तीर्ण दंड प्रमाण दल संयुक्त आत्मप्रदेशनिकौं कपाटाकार दूसरे समय करै है। इहां लोकनाडी के वाहिर प्रदेश गए। तदनंतर वातवलयानिके उरै समस्त लोकव्यापी आत्मप्रदेशनिकौं प्रतर अपर समस्थान नाम समुद्धात करै। यह आकार तीसरेई समय करै इहां प्रदेश वाहिर प्रगट हैं। तदनंतर वातवलयसमेत संपूर्ण लोक व्यापी आत्मप्रदेशनिकौं लोकपूर्णरूप चौथे समय करै इहां भी प्रदेश प्रगट रूप वाहिर हैं। ऐसैं च्यारि समय मांहि प्रदेश प्रसरैं, अर च्यारिही समय मांहि संवरैं। प्रथम समय लोक पूरण संवरै, दूजे समय प्रतर, तीजे समय कपाट, चौथे समय दंड। तहां दंडके प्रसरण संवरण विषै दोय समय औदारिक योग है। औदारिक शरीर योग्य पुद्गलका ग्रहण करै है। कपाटके प्रसरण

संवरणविषै और प्रतरके संवरण विषै तीन समय औदारिक मिश्रयोग है तहां औदारिक मिश्र शरीर योग्य पुद्गलका ग्रहण है प्रतरके प्रसरणविषै, लोक पूरणके प्रसरण संवरणविषै तीन समय कार्माण योग है। इहां किसही नोकर्मसंबंधी पुद्गल का ग्रहण नाहीं। याहीतैं अनाहारक है। इस प्रकार आठ समय केवलिसमुद्घातका निरूपण है। गोम्मटसारविषै आठ समय संबंधी योगका कथन और भांतिभी कह्या है—

"दंडजुगे औरालिय कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु।
पदरे य लोयपुण्णे कम्मे व य होदि णायव्वो॥"

अर्थ—दंडकद्वयकाले औदारिकशरीरपर्याप्तिः, कपाटयुगले औदारिकमिश्रं, प्रतरयोर्लोकपूर्णे च कार्मणं।

इस गाथामैं दंडके दोय समयविषै औदारिक काययोग कह्या, कपाटके दोय समय विषै औदारिक मिश्र कह्या, प्रतर और लोक पूरणके च्यारि समय विषै कार्माण काययोग कह्या, तहां दंडके दोय समय विषै पर्याप्ति नाम कर्मके उदय परिपूर्ण परमौदारिक शरीर युक्त केवलीकैं पर्याप्तित्व संभवै और कपाटके दोय समय विषै अपूरण काययोग है इस हतुसौं औदारिक मिश्रयोग युक्त केवली भट्टारककैं अपर्याप्तित्व संभवै, जातैं तीनों मिश्रकाययोग अपर्याप्त काल विषै होइ हैं।

इहां कोऊ पूछै—मिश्रकाययोगकौं मिश्रसंज्ञा काहे तैं है ?

तिसका उत्तर—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तीनूं शरीरके अपर्याप्त काल विषै अंतरालवर्ती तीन समय गृहीत हैं। जो कार्माण योगसौं कार्माण वर्गणा, तिनके मिलापतैं मिश्रसंज्ञा गोम्मट

सारविषे कही है। इहां कोऊ पूछे और कहै—अंतरालवर्ती तीन समय विषै अनाहारक काल कह्या है तहां कार्माण वर्गणाका आस्रव क्यों कर है? तिसका उत्तर—अनाहारक काल विषै कार्मण योग है तिसतैं कार्मण वर्गणाका आगमन होय है । जहां पंद्रह योगमाहि कोई योग होइ, तहां कार्माणका आस्रव अवश्य जानना। संसारीविषै तेरह गुणस्थान ताईं ऐसा कोई समय नहीं जहां योग न पाइए। ताहीतैं सयोग केवलीकैं भी एक साता वेदनीयका आश्रव है। योगरहित चौदहवां अयोग गुणस्थान है। तहां किसही कर्मका आश्रव नाही। तिसतैं अनाहार काल विषै कार्माण योगके संबंधतैं कार्मण वर्गणाका ग्रहण है। नोकर्मवर्गणाका ग्रहण नाही, यातैं अनाहारक संज्ञा है। तदुक्तं—

"नोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं नाम"

इह साख जाननी और जैसैं केवलीकै पूर्वोक्त कपाटके दोय समय विषै औदारिक मिश्रयोगसौं केवलीकैं अपर्याप्तपना ऊपर कह्या तैसैंही प्रतर लोक पूरणके च्यारि समय विषै कार्माण काययोगके संबंधसौं केवलीकैं अनाहारकपना संभवै। जातैं च्यारि समय विषै कार्माण वर्गणाका ग्रहण नहीं ॥

चरचा वीसवीं २०—समुद्घात केवली तो शास्त्रविषै प्रसिद्ध है। समुद्घात केवलीकी कथा बहुत प्रसिद्ध नाहीं।

समाधान—महापुराणमैं अजितनाथजीकैं तथा विमलनाथजीकैं समुद्घात क्रिया हुई इह प्रसंग आया है।

चरचा इकीसवीं २१—तेरह गुणठाणे केवलीकैं एक सातावेदनीयका बंध कह्या, सो सम-

यस्थायी है। वेदनीयकर्मके बंधकी उत्कृष्ट स्थिति तीससागरकी कही, जघन्य बारह मुहूर्तकी कही इह समयस्थायी कौनसे स्थितिबंधका भेद है ?

समाधान—तेरहवें गुणस्थानमें कषायका अभाव है तातैं स्थितिबंध वहां नाहीं। योग क्रियासां साता वेदनीयका प्रकृति प्रदेश रूप बंध है सो बंधै—एक समय कार्माण वर्गणा आय लगें, दूजे समय उदय रूप होइ खिर जाइ, कषाय विना स्थिति काहेसौं बंधै, तिसतैं इह समयस्थायी स्थिति वेदनीयकर्मकी नाहीं, कर्म वर्गणा की जाननी। इहां कोऊ पूछै—तेरहवे गुणस्थान प्रथम समय साता-वेदनीय बंधै, दूजे समय रस देकैं खिर जाय, कषायका तौ तहां अभाव कह्या है, कषाय विना अनुभाग कैसे संभवै ? तिसका उत्तर—

संसारी जीवनिकैं संक्लेशतासौं असाताका बंध है, विशुद्धतासौं साताका बंध है। सो तीव्र मंद मध्यम भावोंके अनुसार अनुभाग बंधै है। तेरहवें गुणस्थान अत्यंत विशुद्धता हुई, यातैं केवली भट्टारकके अनंतगुण अनुभाग लीयें साता वेदनीयका बंध जानना।

चरचा वाईसवीं २२—तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानमैं पच्यासी प्रकृतिकी सत्ता है। वेदनीयकी २, आयुकी १, नामकी ८०, गोत्रकी २ एवं ८५। तिनविषैं उदय कौनसी प्रकृतिका है ?

समाधान—तेरहवें गुणस्थान वियालीसका उदय है। वेदनीयकी २, वज्रवृषभनाराच संहनन १, निर्माण १, स्थिर १, अस्थिर १, शुभाशुभ २, सुस्वर दुस्वर २, प्रशस्ताप्रशस्त विहायो गति २, औदारिक औदारिकांगोपांग २, तैजस कार्माण २, संस्थान ६, वर्णचतुष्क ४, अगुरुलघु १, उपघात १, परघात १, उच्छ्वास १, प्रत्येक शरीर १, मनुष्यगति १, पंचेंद्रियत्व १, सुभग १, त्रस १, वादर १,

पर्याप्त १, आदेय १, यशस्कीर्ति १, तीर्थंकरत्व १, मनुष्यायु १, उच्चगोत्र १, एवं ब्यालीस ४२ हैं।

इहां कोऊ पूछै—तेरहवें गुणस्थान सातावेदनीय असाता वेदनीय दोऊनिका बंध कह्या तहां सातावेदनीयका उदय तौ प्रगट है। असातावेदनीयका उदय क्योंकर संभवै? तिसका उत्तर—

केवली प्रभुके असाता वेदनीयके सद्भावतैं ए ग्यारह परीषह कही हैं। 'एकादश जिने' इति सूत्रात्। ते कौन? क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श, मल। बाईस परीषहविषै ए ग्यारह परीषह वेदनीय कर्मकी हैं। केवलीकै ये ही जाननेना।

इहां कोऊ फेरि प्रश्न करै—वेदनीय कर्म साता असाताके भेद करि दोय प्रकार है। सो मोह उदयके सहाय विना अपने इंद्रियजन्य सुख दुःखरूप कर्म करनेकौं भी समर्थ नाहीं, जैसें क्षीणमूल वृक्ष फल फूलकौं न देइ। यातैं क्षीणमोह परमेश्वरकैं परीषहका सद्भाव क्यूं कर संभवै?

तिसका उत्तर—इह बात तुम सत्य कही, अनंत चतुष्टय विराजमान केवली महाराजकै मोहकी सत्ताका नाश हुआ, इंद्रियजनित सुख दुखका भी अभाव हुआ परंतु वेदनीय कर्मके उदयका अस्तित्व है तिस करि केवलीकै वेदना विनाभी परीषहका उपचार है। उपचार अपेक्षापूर्वक हो है। जैसै सयोगी जिनकैं एकाग्रचिंतानिरोध बिना अघातिया कर्मके नाशरूप फलकी अपेक्षासौं ध्यानका उपचार है। यातैं यह बात सिद्ध हुई—वेदनीयके उदयकी अपेक्षा केव-

१ ननु, मोहनीयोदयसहायाभावात् क्षुद्रादिवेदनाभावे परीषहव्यपदेशो न युक्तः, सत्यमेवैतद्—वेदनाभावेऽपि द्रव्यकर्मसद्भावापेक्षया परीषहोपचारः क्रियते। निरवशेषनिरस्तज्ञानावरणे युगपत्सकलपदार्थावभासिकेवलज्ञानातिशये चिंतानिरोधाभावेऽपि तत्फलकर्मनिर्हरणफलापेक्षया ध्यानोपचारवत्॥ इति सर्वार्थसिद्धिः।

लीके ग्यारह परीषह हैं परंतु घातिया कर्मकी सहाय विना अपने वेदना रूप कार्य करनेकौं असमर्थ हैं यातैं नाहीं हैं। इस प्रकार कथंचित् हैं, कथंचित् नाहीं हैं ऐसा यहां स्याद्वाद जानना। अैसैं चामुंडरायकृत चारित्राचार ग्रंथमें कह्या है।

अर जो सयोगीजिनकैं एक जीव प्रति साता असाताका उदय है तो भी नीचले गुणस्थानवत् नाहीं। इस कथनका समाधान गोम्मटसारजीके उत्तरार्धविषैं कह्या है। सो भी कहे हैं—

"णट्ठाय रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं॥ २७३॥ गो० कर्मकांड

अर्थ—यतः सयोगकेवलिनि रागद्वेषौ नष्टौ—जातैं सयोगकेवलीविषै रागद्वेष दोनों नष्ट हुये। भावार्थ—मायाचतुष्क ४ लोभचतुष्क ४ वेद ३ हास्य १ रति १ ए तेरह प्रकृति रागकौं कारण हैं। केवली भगवानकैं ए चारित्र मोहकी पचीस प्रकृति मूलतैं गईं यातैं रागद्वेषका लेश भी रह्या नाहीं "तेन तु सातासातजसुखदुःखं नास्ति।" तिसतैं साता असाताके उदयतैं उत्पन्न सुख दुःख होय है सो भी नाही है। 'कुतः?' काहेतैं, 'तस्य इंद्रियजत्वात्—तिस सुख दुःखकौं इंद्रियजन्यत्व है तातैं। भावार्थ—साता असाताके उदय जो सुख दुःख है सो इंद्रियजनित हो है। केवलीकैं इंद्रियां विद्यमान हैं परंतु इंद्रियज्ञानके अभावतैं इंद्रियजन्य सुख दुःखका वेदक नाहीं। अर सहकारी कारण रूप मोहनीयके अभावसूं रागद्वेष विना इष्टानिष्ट विकल्पका अभाव हुआ। इतने कारणनिसौं केवलीकैं साता असाताके उदय सो कार्य करनेकूं समर्थ नाहीं। आगैं इसही अर्थके दृढ करणेकूं युक्ति दिखावै हैं। गाथा—

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परणमदि ॥ गो० कर्मकांड २७? ॥

अर्थ—यतस्तस्य केवलिनः सातावंधः समयस्थितिकः—जातैं तिस सयोग केवलीकैं साता वेदनीयका बंध है सो समयस्थायी है। ततः उदयात्मक एव स्यात्—तातैं उदयात्मक ही होहै। भावार्थ—जो कर्म जघन्य मध्यम उत्कृष्ट स्थितिलीये नीचले गुणस्थान बंधै है सो जथाजोग्य अपने आबाधाकालके अंतरसूं उदय आवै है। जब ताईं कर्मबंध उदय उदीरणाकौं योग्य न होय, तब ताईं आबाधा काल कहिये। जो कोडाकोडी सागर प्रमाण कर्मका स्थितिबंध होइ तो उसका आबाधा काल १००वर्ष का कह्या है। ऐसैं सब सात कर्मोंकी स्थितिके अनुसार आबाधा काल जानना। आयुकर्मका आबाधा काल बंधकालतैं शेषायु है। इहां केवलीकैं कषाय के अभावसूं स्थितिबंध विना समयस्थायी बंध है। तिसतैं आबाधा काल काहेकौं होइ। तातैं इह बंध दूसरे ही समय उदयात्मक है। तेन तत्र असातोदयः सातस्वरूपेण परिणमति—ताकरण करि सयोग केवलीकैं असाताका उदय है सो सातरूप होइ परिणमै है। भावार्थ—सयोग केवलीकैं असाता वेदनीय बंधरूप नाहीं, अनंतगुणहीन शक्ति और निःसहाय अव्यक्त उदयरूप है सो उत्कृष्ट विशुद्धतासूं अनंत गुण अनुभाग लिये बध्यमान जो है साता वेदनीय, तिस रूप परिणमै है। अर असाताके उदय असातारूप होइ परिणमै है ऐसैं न कह्या जाइ। इस प्रकार इतने पूर्वोक्त कारणनिकरि, बहुरि साताके निरंतर उदयकरि असाताके उदयजनित पूर्वोक्त क्षुधादिपरीषहकी बाधा केवलीकैं नाहीं। सूत्रजीमें कही है—जो कारणविषै कार्यका उपचार है।

मुख्यतासूं तिनका अभावही जानना। अयोगकेवलीकै बारह प्रकृतिका उदय है। एक वेदनीय १ मनुष्यगति २, पंचेंद्रियत्व ३, सुभग ४, त्रस ५, वादर ६, पर्याप्त ७, आदेय ८, यशस्कीर्ति ९, तीर्थंकर १०, मनुष्यायु ११, उच्चगोत्र १२ ॥

इहां कोऊ पूछै — तेरहवें गुणस्थान साता असाता दोनोंका उदय पाइये, अर चौदहवें एक जीवकैं दोनूंमें एक हीका उदय पाइये, नाना जीवकी अपेक्षा दोनूंका पाइये। सयोगी गुणठाणें एक जीव साता असाता विषै किसी एक उदयकी व्युच्छित्ति करै तौ पूर्वोक्त व्यालीस प्रकृतिमें तासकी उदय व्युच्छित्ति करै, वाकी वारहकी उदयव्युच्छित्ति चौदहवें होइ। अर नाना जीवकी अपेक्षा तेरहवें गुणठाणे साता असाताविषै किसीकी व्युच्छित्ति न करै तौ उनतीसकी उदय व्युच्छित्ति इहां होइ। वाकी तेरहकी चौदहवें गुणठाणे व्युच्छित्ति होइ। इह कथन गोम्मटसारजी के उत्तरार्द्धविषै है।

तहां कोऊ पूछै—तेरहवे गुणठाणे एक जीवकैं साता असाता दोनूंका उदय कह्या। उदय व्युच्छित्ति दोनूंमें किसी एक की कही। जिन असाताकी उदय व्युच्छित्ति कीनी होइ, तिनकैं चौदहवें गुणठाणे साताका उदय संभवै। अर जिन साताकी उदय व्युच्छित्ति कीनी होइ तिनकैं असाताका उदय संभवै। तिसका उत्तर—जो जीव तेरहवें गुणठाणे असाताके उदयकी व्युच्छित्ति करै ताकैं तो चौदहवें साताका उदय प्रगट ही है। और जो साताके उदयकी व्युच्छित्ति करै तौ अनंत चतुष्टय विराजमान केवलीकैं असाताका उदय कछु करने समर्थ नाहीं, उपचारमात्र है।

चरचा तेईसवीं २३ — तेरहवें गुणठाणे केती इक पाप प्रकृति सत्ताविषै हैं, उदय विना कि-

सी ही प्रकृतिका क्षय होता नाहीं, सो सत्ता तौ संभवै उदय क्यूंकर संभवै ?

समाधान – कर्मोंका उदय दोय प्रकार है। एक रसोदय, दूसरा अनुदय। रसोदय का दूसरा नाम प्रदेशोदय है। जिस प्रकृतिका जैसा रस तैंसा प्रगट रस देकैं खिरै तिस विपाकोदय कहिये अर विनाहीं रस दिये जो खिरै तिसै प्रदेशोदय कहिये।

तिसका उदाहरण—नव गुणठाणे छत्तीस प्रकृतिका क्षय होय है, सो उदय होइकै ही हो है। तहां अप्रत्याख्यान ४, प्रत्याख्यान ४, एवं कषाय ८ सत्ताविषैं हैं, उदयमें नाहीं। उदय तौ संज्वलनका है तिसतैं आठ कषायका जो क्षरण है तिस उदयकी प्रदेशोदयसंज्ञा है। और छत्तीस प्रकृतिमें एकेंद्रियादि प्रकृति १३ नामकर्मकी भी गईं थीं ते भी प्रदेशोदय करि ही खिरीं। यातैं एकेंद्रियादिकी प्रकृतिका विपाकोदय तौ अपनी २ गति विषैं होय है। और भी नवमे गुणस्थान विषैं प्रकृतिका क्षय हो है सो प्रदेशोदयतैं जानना। अथवा तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होइ है तब अंतःकोटाकोटी मात्र स्थिति लीये हो है। इह नियम है। तिसका आबाधा काल अंतर्मुहूर्त मात्र है तिस पीछैं प्रदेशोदयतैं खिरने लगै, उत्कृष्ट तीन भव पर्यंत असंख्यातकाल ताईं चला जाइ। अर यह प्रकृति ध्रुव बंधती है। तिसतैं प्रदेशबंध तौ समय समयमें होहि। स्थितिबंध है सो प्रकृति अंतर्मुहूर्त बंधै है तिसही बंधी स्थिती माहि असंख्यातवर्षकी स्थिति और प्रदेशोदय होइकै प्रदेश क्षरण होइ। इस भांति निरंतर क्षरण निरंतर बंध चला जाइ है। इह ही प्रदेशोदयका उदाहरण समझना। विशेष इतना—तीर्थंकर प्रकृति ध्रुवोदयी है। तिसतैं विपाकोदय विना प्रदेशोदयतैं जाती नाहीं, अवश्य उदय आवै, तीर्थंकर होइ ही होइ। तद्भव होइ तथा तीसरे भव ३३

होइ। अर आयु बंध विना च्यारो गतिका बंध विपाकोदय विना प्रदेशोदयतैं खिराइकैं मुक्त होइ। इसप्रकार आयु कर्म विना सातौ कर्मविषैं प्रदेशोदय अर विपाकोदय जानना। आयुकर्म विषैं प्रदेशोदय नाहीं होय है, विपाकोदयका ही नियम है। इस भांति प्रदेशोदय विपाकोदयका स्वरूप है। तेरह गुणठाणे वियालीस प्रकृतिका उदय है, तिसमें केतीकका प्रदेशोदय है अर केतीकका विपाकोदय है। अर चौदहे गुणठाणे बहत्तर प्रकृतिका प्रदेशोदय है, तेरह प्रकृतिका विपाकोदय है सोई अंतका दोय समयविषैं तिनका क्षय जानना।

चरचा चौवीसवी २४—केवली परमौदारिक देहका धरनहारा है। सो देह जातिमें औदारिक है वैक्रियिक तथा आहारककैं जाति नाहीं। सातकुधातुसौं रहित औदारिक है तातैं परमादौरिक संज्ञा जाननी। तदुक्तं ज्ञानप्राभृतमध्ये श्रीकुंदकुंददेवैः—

"औरालियं च दव्वं णायव्वो अरहपुरुसस्स"

इति वचनात्। तहां इह संदेह—तिस औदारिक शरीर की स्थिति कवलाहार विना देशोन कोडि पूर्व है, सो काहेसों होइ?

समाधान–आहारके छह भेद हैं। नोकर्माहार १, कर्माहार २, कवलाहार ३, लेपाहार ४, उज्आहार ५, मनसाहार ६। ये छह प्रकारका आहार यथासंभव देहकी स्थितिकूं करण है। गाथा—
णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेवआहारो। उज्जमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो भणियो॥
णोकम्मं तित्थयरे कम्मं च णरे य मानसो अमरे। णरपसु कवलाहारो पंखी उज्जो णरे लेओ॥
अर्थ—प्रथमही तीर्थंकर केवलीकैं नोकर्म आहार वताया इहां कोऊ कहै—अनाहारक काल विना

तौ नोकर्मका ग्रहण समस्त संसारी जीवनिकैं है। केवलीकैं कौनसा विशेष है? तिसका उत्तर—
केवलीकैं लाभांतराय कर्मके क्षयतैं अनंतलाभ प्रगट हुआ। यातैं अपूर्व असाधारण पुद्गलका प्रति समय केवलीकी देहसौं संबंध होइ है। येही नोकर्म आहार केवलीकी देहकी स्थितिकौं कारण है और नाहीं। इस हेतुसौं केवलीकैं नोकर्महीका आहार कह्या। १। नारकीनिकैं नरकायु नामकर्मका उदय है। वही देहकी स्थितिकौं कारण है। तातैं इनकैं कम[illegible] आहार कह्या। २। देवता मनहीस्यौं तृप्त होइ हैं तातैं इनकैं मानसीक आहार कह्या ३। मनुष्य त[illegible] तिर्यंचकैं कवलाहार प्रसिद्ध ही है। ४। अर पंखीनिकैं अंडे विषै उज्जाहार है। सो उज्जा कहा कहाव[illegible]? शरीरविषै रसादि सप्त धातु हैं। तिनहीके विकारसूं उत्पन्न सात उपधातु हैं प्रथम रसकी उपधातु अपकारसे है। रुधिरकी उपधातु पित्त प्रकोपतैं अधोऽर्धताई रक्त है। मांसकी उपधातु वसा है। मेदनाम धातुकी उपधातु स्वेद है। आस्थिकी उपधातु दंत है। मज्जाकी उपधातु केस है। शुक्र नाम धातुकी उपधातु ओज है। सो अष्ट बिंदु प्रमाण सचिक्कण श्लेमाकार वीर्य धातुका सार है। उसके अंशतत्त्वसौं जीवका अंशतत्व है उसके क्षयसौं मरण हो है। पंखीनिके अंडनिकी देहकी स्थितिकौं तथा वृद्धिकौं वही कारण है।

इहां कोऊ पूछे—अंडौंको पंखी सेवै है। उस गरमीका नाम हम ओज सुना है। तिसका उत्तर—कुंज नाम पंखी ऐसे हैं, अंडोंकौं धरकै फेरि अंडोंसे मिलें नाहीं। इह ओजाहार तहां क्यूं कर संभवै? वृक्ष जातिकैं लेपका आहार है। पानी लगै यही लेप है यह छह प्रकारके आहारका स्वरूप जानना।

चर्चा पच्चीसवीं २५–परमौदारिक देहका क्या स्वरूप है ?

समाधान–औदारिक देहके दोय भेद हैं–एक औदारिक १ दूजा परमौदारिक। जहां रस रुधिरादि सातो धातू अपवित्र होंइ, जिनका स्पर्श रस वर्ण गंध ग्लानि उपजावै, प्रस्वेदादि दोष पाइए, रोगसों कलंकित होइ, इत्यादिक औदारिक शरीरके लक्षण जानने। अर जहां रस रुधिरादि सात धातु कुधातु रूप न होंइ, पवित्र होंइ, सुगंध सुवर्ण होंइ, जरा रोग प्रस्वेद नासामल कर्णमल नेत्रमल खखार इत्यादि कोई दोष न पाइए,ये परमौदारिक देहके लक्षण जानना। सो गृहस्थावासमें तीर्थंकर विना औरका न होइ। केवलज्ञान हुये सबका होय। यह नियम है। उत्कृष्ट औदारिक कहौ, या परमौदारिक कहौ। इन दोनौंका नाम जुदा जुदा है। अर्थ एक ही है।

इहां कोई कहै–तीर्थंकरका परमौदारिक शरीर गृहस्थपनमें होइ, यह वात कहां कही है ? तिसका उत्तर–इस कथनकी साख आदिपुराणमध्ये पद्रहवें पर्वविषै स्वामीके कुमार काल वर्णन प्रसगंमें देखलीज्यो। तथाहि, श्लोकः–

तदस्य रुरुचे गात्रं, परमौदारिकाह्वयं। महाभ्युदयनिःश्रेयसार्थानां मूलकारणं॥

तेरहवें गुणठाणे परमौदारिक शरीर सवका कह्या, तिसका स्वरूप तथा तिसकी साख कुदं कुंदाचार्य कृत ज्ञानपाहुडमें देखना। तथाहि, गाथा—

तेराहिमे गुणठाणे सजोगकेवलि य होइ अरहंतो। चउतिसअइसययगुणा होंति हु तस्सट्ठपडिहारो।
मणुयभवे पंचेंदियजीवट्ठाणे सु होइ चउदसमे। एहो गुणगणजुत्तो गुणमारूहो हवे अरहो॥
जरमरणदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं। सिंहाणखेलहेदू णत्थि दु गंथा य दोसा य॥

दस पाणा पज्जंती अट्ठसह य लक्खणा भणिया। गोछीरसंखधवलो मांसं रुहिरं च सव्वंगो ॥
एरिसगुणेहि जुत्तं अइसयवंतं च परमलाभोयं । ओरालियं च दव्वं णायव्वो अरहपुरिसस्स ॥

इस गाथाविषै तीर्थंकर केवलीकी अपेक्षा जाननी । इहां कोऊ पूछै–गृहस्थ तीर्थंकरके परमौदारिक शरीरविषै अर केवलीके परमौदारिक शरीरविषै फेर क्या हुवा ? अथवा तीर्थंकर ही केवली होंइ तब क्या विशेष होय ? तिसका उत्तर—

बारहे गुणठाणेके अंत सबहीका शरीर बादर निगोदरहित होइ। यहु नियम है। तदुक्तं गोम्मटसारे, गाथा—

पुढवी आदि चउण्हं केवलिआहारदेव णिरयंगा। अपदिट्ठिदी निगोदहिं पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥

इस समयमें आठ जायगा बाहर निगोद का निषेध कीया। यातैं केवलीकै परमौदारिक शरीरविषै स्वेत रुधिर, स्वेतमांस बताया। अर ज्ञानार्णव शास्त्रविषै केवलीका शरीर रुधिरादि धातु वर्जित कह्या। सो वह इह कथन कैसैं मिल्या ? तथाहि, श्लोकः—

सप्तधातुविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीकटाक्षितं। अनंतमहिमाधारं, सयोगिपरमेश्वरं ॥

इस श्लोकके अर्थसौं केवलीका शरीर सप्त धातुसौ रहित है । तिसका उत्तर–केवलीकैं परमौदारिकमय धातूनिका निषेध नाहीं, कुधातूनिका निषेध जानना। अर जो इस कथन में संदेह कीजौ तौ तीर्थंकर केवलीकै छ्यालीस गुण कहे हैं। "अरहंता छैयाला।" इति वचनात् तिन छ्यालीस गुणविषै क्षीरवर्ण रुधिर, वज्रवृषभनाराच संहनन है। संहनन नाम हाड अस्थिका है। इनि विना छ्यालीस गुणका जोड कैसै मिलै ? तातैं परमौदारिकमें सात कुधातु नाहीं।

इतने परभी चित्तमें न आवै तौ आदिपुराणमें पचीसवे पर्वविषै भगवंतके समवसरनमें इंद्रने स्तुति कीनी है तहां देखना। तथाहि, श्लोकः—

अस्वेदमलमाभाति सुगंधं शुभलक्षणं। सुसंस्थानमस्तासृक् वपुर्वज्रस्थिरं तव ॥

इस श्लोकमें 'अस्तासृक्' इस पद करि क्षीर वर्ण रुधिर कह्या। तथा श्रीसमंतभद्राचार्यकृत वृहत्स्वयंभूस्तोत्रविषै मुनिसुव्रत स्वामीके स्तवनमें ऐसें ही कह्या है। तथाहि श्लोकः—

अधिगतमुनिसुव्रतास्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवानुडुपरिषत्परिवीतसोमवत् ॥ १११ ॥
शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते यदपि च वाङ्मनसोऽयमीहितम् ॥ ११२ ॥

इत्यादि आगमोक्त अर्थकूं मिलायकैं यथावत् श्रद्धान करना उचित है ॥

चरचा छवीसवी २६—संहनन कौन कौन जागै है अर कौन जागै नाही ?

समाधान—स्वर्ग, नरक, एकेंद्री, कार्माण, आहारक, चौदहो गुणस्थान इन छहौं जागै संहनन नाही। वाकी और जागै संहनन है ही।

चरचा सतावीसवीं २७—तीर्थंकर केवलीकैं छयालीस गुण कहे और सामान्य केवलीकैं कितने होइ ?

समाधान—तीर्थंकर केवलीकैं तथा सामान्य केवलीकैं अनंत चतुष्टय तौ समान है। और गुण कोई न होइ। याहीतैं त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिविषै तीर्थंकर केवलीकैं छयालीस गुण कहे। तथाहि गाथा—

चउतीसा तीसयदे अट्ठ महापाडिहेरसंजुत्ते। मोक्खयरे तित्थयरे तिहुवणणाहे णमंसामि॥

चरचा अठावीसवीं २८—तीर्थंकर प्रभुके दश जन्मातिशयमैं अनंतबल कह्या। ताकरि महाराज लोक स्कंध उठावनेकौं समर्थ हैं। केवलज्ञानके समय अनंत वीर्य कह्या। इन दोनोंमें विशेष (भेद) क्या?

समाधान—जनमातिशयविषै अनंतबल देहबलकी अपेक्षा है। केवलज्ञानकी वार अनंत शक्ति जाननी। तदुक्तं आदिपुराण मध्ये, श्लोकः—

विश्वविज्ञानतोऽपीश? यत्ते न स्तः श्रमक्कमौ। अनंतवीर्यताशक्तिस्तन्माहात्म्यं परिस्फुटं॥

चरचा उनतीसवीं २९—तीर्थंकर केवलीकैं छयालीस अतिशय विषै वाणीका प्रसंग तीन वार आया। प्रथम जन्मातिशयविषैं प्रियाहित वचन आये फिर देवकृत चौदह आतिशयमें सकलार्थ मागधी भाषा आई। फेरि आठ प्रातिहार्यविषैं दिव्यध्वनि कही। तिनमें विशेष क्या?

समाधान—प्रथम दश सहज आतिशयविषै प्रिय हित वचन कहे। सो ग्रहस्थाश्रममें तीर्थंकरके वचनकी प्रशंसा कही। और चौदह देवकृत आतिशयमैं सर्वार्थ मागधी भाषा है। सो सर्वकौं हितकारी अर्ध मागधी नाम भाषा रूप है। भगवानकी निरक्षरी ध्वनि सकल भाषा रूप होनेकौं जोग्य है। सो मागध नाम देवताके समीप भावसौं अर्धमागधी रूप होइ है यह भाषा समवसरणवर्ती सव जीव समझैं हैं यातैं देवकृत अतिशयमें गिनी अर्द्धमागधी भाषा जाननी। इहां कोऊ पूछै—अर्द्धमागधी भाषा क्या कहावै? तिसका उत्तर—

सात जातिकी प्राकृत भाषामें एक मागधी भाषा है। तथाहि श्लोक:—

मागध्यावंतिका प्राच्या शौरसैन्यर्धमागधी। वाहीकी दाक्षिणात्या च भाषाः सप्त प्रकीर्तिताः ॥
और इहां कोऊ पूछै—समवरणमें सर्वही अर्धमागधी भाषा समझैं यह वात कहां कही ? तिसका उत्तर—आदिपुराण मध्ये कह्या है । तथाहि, श्लोक :—

अर्द्धमागधिकाकारभाषापारिणताखिलं । त्रिजगज्जनतामैत्रीसंपादनगुणाद्भुतं ॥

इहां कोऊ पूछै और संदेह करै—आठ प्रातिहार्यमें भगवानकी दिव्यध्वनि मेघकी गर्जना समान निरक्षरी है। सो अर्ध मागधीरूप क्यूं करि हो है ? तिसका उत्तर—यावत् काल ध्वनि श्रोताजनोंके कर्ण प्रदेश पर्यंत पहुंचै नाही, तावत काल निरक्षरी है। पीछै सकल भाषा रूप होनेकों जोग्य अर्धमागधी रूप होइ पारिणमै है ।

चरचा तीसमी ३०—समोसरणमें केवली कहां तिष्ठै है ?

समाधान—ध्वजास्थानके आगै सहस्रस्तंभके ऊपर महोदय नाम मंडप हैं। तिसके परिवार मंडपविषैं तिष्ठै हैं। सो श्रीहरिवंशपुराणविषै कथन है ।

चरचा इकतीसवी—स्पर्शन इंद्री शीतोष्णादि स्पर्शका ग्रहण करै है। रसना रस ग्रहण करै है। नासिका गंधकौं ग्रहण करै है। नेत्र इंद्री रूप देखै हैं। कर्णइंद्री शब्दकौं ग्रहण करै है। मनेंद्री सब जाने है। ये मन समेत छहो इंद्री अपने सुयोग्य विषयकौं ग्रहण करै हैं। यह ग्रहण सामर्थ्य रूप धरू गुण किसका है ? जीवका कहो तौ मुक्ति जीवकै बताओ। पुद्गलका कहो तौ मृतककैं बताओ। दोनों का कहो तौ केवलीकैं बताओ ।

समाधान—जीव द्रव्य तौ अपने दर्शन ज्ञान रूप उपयोगमयी है। 'जीवो उवओगमओ' इति

वचनात्। यातैं जीवकैं तो, मुख्य गुण दोय ही हैं--देखना, जानना। सो विभाव अवस्थाविषैं नेत्र इंद्रियसौं देखे है मनेंद्रीसौं जाने है अर स्वभाव अवस्थाविषैं केवल दर्शनसौं देखे अर केवलज्ञानसौं जाने। तिसतैं संसारविषैं नेत्र इंद्री तथा मन इन दोनोविषैं स्वयोग्य विषय ग्रहण रूप-गुण है सो जीवका है। वाकी स्पर्शन इंद्री आदि च्यारो इंद्री विषैं स्वयोग्य विषय ग्रहण रूप गुण है सो जीवका नाही है वा पुद्गलका गुण है। अठै पूछनेवाला बोल्या—तौ मृतकमें क्यूं न कहो?

तिसका उत्तर—मृतकमें कहांसूं होइ, देखने जाननेवाला तो जाता रह्या। फेरि पूछै—नेत्र अर मन इन दोनों इंद्रियविषैं जीवका गुण है वाकी स्पर्शनादि च्यारो इंद्रियनिविषैं पुद्गलका गुण है यह भिन्नता क्यूं करि जानी गइ? तिसका उत्तर—पदार्थ अर इंद्री इन दोनोंके परस्पर संबंध होय तब पदार्थ ग्रहण रूप ज्ञान होइ है सो ज्ञान दोय प्रकार है। एक तो स्पृष्ट संबंधी ज्ञान है। दूसरा अस्पृष्ट संबंधी ज्ञान है। जो ज्ञान पदार्थके स्पर्शसूं होय तिसे स्पृष्ट संबंधी ज्ञान कहिये। अर जो पदार्थके स्पर्श विना दूर ही तैं ज्ञान होय तिसे अस्पृष्ट संबंधी ज्ञान कहिये। स्पर्शन जिह्वा नासिका कर्ण इन च्यारि इन्द्रियनिसूं पदार्थ स्पर्शके विना ज्ञान नाहीं होइ। स्पर्शनेंद्री शीतोष्णादिका ग्रहण तब करै है जब ताती सीरी बयार आय लगै। जीभ रसकौं तब आस्वादै है जब मिष्ट आम्लादि रसका स्पर्श करै है। नासिका तब सूंघै है जब सुगंध दुर्गंध नासिकामें प्रवेश करै है। कान तब सुनै हैं जब शब्द कानमें आवै है। तातैं इन चारो इंद्रियनिकैं स्पृष्ट संबंधी ज्ञान है। नेत्र इंद्री अर मन इंद्री इन दोनूंकै इस भांति पदार्थका ग्रहण नाहीं होइ है इनकैं पदार्थनिका स्पर्शविना दूर हीतैं ग्रहण होय है। नेत्रकज्जलवत्। यातैं इनकैं अ-

६

स्पृष्ट संबंधी ज्ञान है। नेत्र इंद्री अपने स्थान ही सौं रक्त वर्ण अग्निकौं देखै है। स्पर्शन जिह्वा नासिका कर्ण इंद्रियके विषयकी नाईं अग्नि नेत्रसौं संबंध नाहीं होता। अैसें ही मन अपने स्थान रहै है, घट पटादि पदार्थनिकौं दूरही तैं जानै है। घटपटादिकका प्रवेश मनविषैं नाहीं होय है। अर सूत्रजीमें भी मतिज्ञानके अधिकार विषैं अवग्रहादि च्यारि भेद कहे हैं। तहां अवग्रह नाम प्रथम ही अपूर्व पदार्थके किंचित् ग्रहणका है। तिसके दोय भेद—एक अर्थावग्रह, दूजा व्यंजनावग्रह। जो प्रगट अवग्रह होय तिसे अर्थावग्रह कहिये अरु जो अप्रगट होय तिसे व्यंजनावग्रह कहीये। सो स्पर्शन जिह्वा नासिका कान इन च्यारि इंद्रियनिकैं व्यंजनावग्रह पूर्वक अर्थावग्रह होय। जातैं इन विषैं पदार्थका स्पृष्ट संबंध होइ है तब व्यंजनावग्रहतैं दोय तीन समय अर्थका प्रगट ग्रहण नाहीं, कोरे सरावेमें जलविंदूकी नाईं। पीछै अर्थावग्रहसौं प्रगट ग्रहण होइ है। मन अर नेत्र इंद्रिय इन दोनोंकै अर्थावग्रह ही हैं। जातैं इनकैं पदार्थके स्पृष्ट संबंध विना दूरहीतैं ज्ञान होइ है। "व्यंजनस्यावग्रहः, न चक्षुरनिंद्रियाभ्यां" इति उक्तत्वात्। इस हेतुसौं स्पर्शनादि च्यारो इंद्रियनिकैं व्यंजनावग्रह अर्थावग्रह दोनौं जानना। इसप्रकार अपेक्षासौं स्पर्शन आदि चारो इंद्रियनिविषै स्वयोग्य विषय ग्रहणरूप गुण पुद्गलीक है। मन इंद्री नेत्र इंद्रीविषै आत्मीक गुण है। यातैं इह बात सिद्ध भई—देखना जानना ए घरू गुण जीवके हैं वाकी स्पर्शग्रहणादि गुण पुद्गलके हैं। अैसें न होइ तो केवलीकैं शीतोष्णकी बाधा होय, रसास्वाद होय, सुगंध दुर्गंध आवै, शब्द सुनै, आंखनिसों देखै, मनसों जानै। तब छद्मस्थकी नाईं इंद्रियज्ञान हुआ, सो न संभवै। केवली प्रभुके इंद्रिय तो सब हैं परंतु इंद्रियजनित ज्ञान

नाहीं। जीवके दर्शन ज्ञान मुख्य गुण थे सो प्रगट हुवे, स्वभावरूप हुवे तातैं अतींद्रियज्ञानसौं सब जानै हैं, अतींद्रिय दर्शनसों सब देखै हैं। तिनके आगैं इंद्रियज्ञान ऐसा है जैसें सूर्यके आगै दीपक संजोय धरना। दीपक सूर्यके आगै रातिकीसी नाईं जोति बलै है परंतु उजाला करनेकौं समर्थ नाहीं। तैसें ही केवलीकैं इंद्रियां विद्यमान हैं परंतु दर्शन ज्ञानके आगै इंद्रियनिका विषय कछु रह्या नाही।

चरचा बत्तीसवीं ३२—केवली तीर्थंकरकै अष्ट प्रातिहार्यविषै अशोकवृक्ष कह्या सो काहेका वृक्ष है?

समाधान—जिस वृक्षके नीचे तीर्थंकर प्रभूकै केवलज्ञान उपजै सोई वृक्ष समोसरणविषै अशोक वृक्ष कहावै। आदिनाथजीको वटवृक्ष नीचे ज्ञान हुवो, अजितनाथजीकौं सप्तपर्णके वृक्षतलै ज्ञान हुवो इत्यादि चौवीस तीर्थंकरका ज्ञानवृक्ष है तेई शोक निवारण अतिशयतैं अशोक वृक्ष जानना। इह कथन त्रैलोक्य प्रज्ञप्तिमें है। तथाहि, गाथा—

जेसिं तरुणीमूले उप्पण्णं जाण केवलं णाणं।
उसहपहादिजिणाणं तच्चेवत्थि असोयरुक्खं ति॥

चरचा तेतीसमी ३३—समवशरणमें तूप कहे हैं तिनकी उच्चता तथा विस्तार क्या है?

समाधान—इनके प्रमाणका कथन संप्रति उच्छन्न है। तदुक्तं, गाथा—

दीहत्तरूहमाणं ताणं संपय पणट्ठउवएसं।

१ जिस वृक्षके नीचे आदिनाथ आदि जिनेंद्र भगवानों को केवलज्ञान हुआ है वही अशोकवृक्ष है।

भव्वा अभिसेयचन यदि हाणिं ते सुकुव्वांति (?) ॥

और इस गाथामें यहभी कह्या–भव्य जीवनिकौं इनका दर्शन होइ, अभव्यनिकौं न होय। अैसें ही श्रीहरिवंशपुराणजीमें है। तथाहि, श्लोकः—

भव्यकूटाश्रयास्तूपा भास्वत्कूटास्ततोऽपरे।
यानभव्या न पश्यंति प्रभावांधीकृतेक्षणाः ॥

इस श्लोकमें स्तूपानिक दोय भेद जानने।

चरचा चौतीसमी ३४–कोई अैसा कहे–जब तीर्थंकर केवलीकी आयु मास वाकी रहे तब पुण्य पूरा होय जाय। समवसरणकी रचना न रहे, बारहसभा विघट जांइ, देवता प्रमुख पास होंइ सो चले जांइ, प्रणाम करैं नाहीं। यह वात क्यों कर है?

समाधान–प्रथम तो तीर्थंकर केवली अंतमें विहार करके आवै तब पद्मासन कायोत्सर्गासन यथायोग्य निश्चल होइ तिष्ठै। हलन चलन रूप काय योगकी क्रिया, उपदेश रूप वचन योग की क्रिया, सब रहि जांय। बारहसभाके जीव अंजुली जोरे रहैं इस भांति उत्कृष्टपनै एक मास पर्यंत योगनिरोधकी रीति महापुराणमें कही है। ऋषभदेवजी योगनिरोध कीना तब चौदह दिन ताईं निरंतर भरतजीने पूजा कीनी। तद्यथा आदिपुराणे सप्तचत्वारिंशत्तमपर्वाणि–

सतां सत्फलसंप्राप्त्यै विहरन् स्वगुणैः समं। चतुर्दश दिनोपेतं सहस्राणां च पूर्वकं ॥

१ स्तूप दो तरहके होते हैं एक भव्यकूट दूसरे भास्वत्कूट। और इनके प्रभावसे जिनकी आख अंधी हो जाती है ऐसे अभव्य लोग नहीं देख सक्ते।

लक्षं कैलासमासाद्य श्रीसिद्धशिखरांतरे । पौर्णमासीदिने पौषे निरीच्छः समुपाविशत् ॥
ध्वनौ भगवता दिव्ये संहृते मुकुलीभवत्–करांबुजा सभा जाता पूष्णीव सरसीत्यसौ ॥
तदाकर्णनमात्रेण सत्वरः सर्वसंगतः । चक्रवर्ती तमभ्येत्य त्रिःपरीत्य कृतस्तुतिः ॥
महामहिमहीं पूजां भक्त्या निर्वर्तयन् स्वयं । चतुर्दशदिनान्येवं भगवंतमसेवत ॥

चरचा पैंतीसवी ३५–चौवीस तीर्थंकर किस किम आसनसौं मोक्ष गये ?

समाधान–आदिनाथ, वासुपूज्य नेमिनाथ ये तीन पद्मासनसौं मोक्ष गये । बाकी इकवीस तीर्थंकर कायोत्सर्गासनसौं मुक्त हुवे । इस भांति त्रिलोकप्रज्ञप्ति नाम ग्रंथमें कहा है । तथाहि गाथा—

रिसहो यं वासुपुज्जो णेमी पल्लंकबद्धया सिद्धा ।
काउस्सग्गेण जिणा सेसा मुत्तिं समावण्णा ॥

चर्चा छत्तीसमी ३६–केवलीकैं प्रतिसमय असाधारण पुद्गलवर्गणा शरीरसौं बंध करै । यह क्षायिक लाभ हूवा । सिद्धपर्याय विषैं क्षायिक लाभका प्रसंग कैसे संभवै ?

समाधान–पांच प्रकार अंतरायके क्षयतैं क्षायिक दान लाभादिकी प्रवृत्ति अंनतवीर्य अव्याबाध सुखकरि संभवै । जैसैं अनंतवीर्य केवल ज्ञानकरि संभवै । इह कथन सर्वार्थसिद्धिनाम तत्त्वार्थ सूत्रजीकी टीकामें जानना ।

१ आदिनाथ जी, वासुपूज्यजी और नेमिनाथजी पद्मासनसे मोक्ष गये हैं बाकीके तीर्थंकर कायोत्सर्गासन से मुक्त हुवे हैं ।

२ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः । परमानंतवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानंतवीर्यवृत्तिवत् अ० २ सू. ४ ॥

चरचा सैंतीसमी ३७—समवसरणमें तीर्थंकर केवली कौनसे आसन रहै ?

समाधान—तीर्थंकर महाराज समवसरणविषैं पद्मासनही रहै यह नियम है। अर जैसें वज्र विषैं उकेरी प्रतिमा निश्चल होइ रहै तैसैं निश्चल रहैं। तदुक्तं महापुराणे श्लोकः—

नवकेवललब्ध्यादिगुणलब्धवपुष्टरां। अभेद्यसंहतिर्वज्रशिलोत्कीर्ण इवाचला॥

इस श्लोकमें अर्हंत केवली समवसरणमें निश्चल रहैं इह तो प्रमाण है। और पद्मासन ही रहैं यह नियम कहां कीना है? तिसका उत्तर—प्रथम ही पंडित रूपचंदजीने पंच मंगलविषैं सब तीर्थंकर संबंधी सामान्य कथन कीना है, किसी एक तीर्थंकर संबंधी नाहीं। तहां समवसरणके मध्य भाग मेखला पीठके ऊपर गंध कुटी है तिसमें सिंहासन है, तिसपै कमल है, ऊपर भगवान अंतरीक्ष पद्मासन विराजमान हैं। सोई कह्या है——

मध्य प्रदेशतीन मणि पीठ तहां बने। गंधकुटी सिंहासन कमल सुहावने॥

तीन छत्र शिर सोहत त्रिभुवन मोहए। अंतरीक्ष कमलासन प्रभु तहां सोहए॥

तथा चोक्तं यशास्तिलकनाम्नि महाकाव्ये समवसरणेऽर्हत्स्वरूपवर्णनं (यशास्तिलकचंपू नामके महाकाव्यमें समवसरणके कथनविषैं लिखा है)

देवदेवं समासीनं पंचकल्याणनायकं। चतुस्त्रिंशद्गुणोपेतं प्रातिहार्योपशोभितं॥

और जहां रेवती रानीकी परीक्षा निमित्त क्षुल्लकने मायामयी समवसरणकी रचना करी तहां भी तीर्थंकरका रूप पद्मासन ही समवसरणके मध्य दिखाया। इह कथन श्रीसमंतभद्राचार्यकृत रत्नकरंड नाम ग्रंथकी टीकाविषैं देखना। तथाहि—'उत्तरस्यां दिशि समवसरणमध्ये प्रातिहार्या-

ष्ठकोपेतं सुरनरमुनिवृंदवंद्यमानं पर्यंकस्थं तीर्थंकरदेवरूपं दर्शितं।' ऐसैंही बडे हरिवंशपुराणजीमें गजकुमारके प्रसंगमें नेमिनाथस्वामी समवसरणमें पद्मासनही कहे हैं। तथाहि श्लोकः—

विवाहारंभसमये मुदिताखिलयादवे। जाते जिनपतिः प्राप्तो विहरन् द्वारिकां तदा॥
समागत्योपविष्टं तमद्रौ रैवतिके विभुं। वंदितुं निर्ययुः सर्वे यादवा बहुमंगलाः॥

इहां कोई कहेगा—नेमिनाथ तो पद्मासनसौं मोक्ष हुवे हैं यातैं समवसरणविषैं बैठे कहे। इस हेतु सौं उदाहरण बनै नाहीं। तिसका उत्तर—बृहद्पद्मपुराणके प्रथम सर्गविषैं कायोत्सर्गासनसौं मुक्त जे हैं वर्धमान स्वामी वे भी समवसरणविषैं बैठे कहे हैं। तथाहि श्लोकः—

अशोकपादपस्याधो निविष्टः सिंहविष्टरे। नानारत्नसमुद्योतजनितैंद्रशरासने॥

ऐसैंही बृहत् हरिवंशपुराणके दूसरे सर्गविषैं समवसरण मध्ये वर्धमान जिन बैठेही कहे हैं। तथाहि श्लोकः—

सिंहासनोपविष्टं तं सेनया चतुरंगया। श्रेणिकोऽपि च संप्राप्तः प्रणनाम जिनेश्वरं॥

इत्यादि अनेक जायगै समवसरणमध्ये बैठे ही कहे हैं। एक और भी इसप्रसंगका उदाहरण जानना। ज्ञानार्णव शास्त्रमें पिंडस्थ ध्यानका पंचधारणाविषै पार्थवी धारणाकी साधनरीति कही है। तहां प्रथम अपने शरीरविषै मध्यलोककी बराबर एक राजू प्रमाण निःशब्द निस्तरंग मोतीके हार तथा तुषारसम उज्ज्वल क्षीरसमुद्र स्थापै। तिसके मध्य जंबूद्वीपके समान तायै सुवर्णके वरण पद्मरागमयी केसरसौं शोभित चित्तभ्रमरकौं प्रिय, अत्यंत तेजोमय सहस्रदलकमलकूं चिंतवे, तिसविषै सुमेरुमई प्रभाजालकरि प्रकाशमान दिव्य कर्णिका विचारे। तिसके ऊपर

शरत्कालके चंद्रमा समान श्वेत उन्नत सिंघासनकी कल्पना करै। तिसपर शांतरूप अर्हंतके समान बैठे, आतमस्वरूपका ध्यान करै। इहां भी पद्मासन ही आया॥ अर अकृत्रिम चैत्यालयविषै समवशरणवत् रचना है। तहां भी समस्त प्रतिमा पद्मासन ही कही हैं। वहां भी वही हेतु जानना। तथा सामान्य मुनीश्वर भी खडे उपदेश करै नाहीं, तौ केवलीका उपदेश खडे आसन क्योंकर संभवे? अथवा बारह सभाके जीव बैठ रहैं, केवली खडे रहैं यह भी बने नाही। यातैं आगम, अनुमान युक्ति प्रमाण करि समवशरणमें केवली पद्मासन ही संभवैं।

इहां कोई और पूछे—जिस महाराजकौं कायोत्सर्गासनसौं ज्ञान हुवा होइ, तो समवसरणमें कौनसे आसनसौं रहै? तिसका उत्तर—तीर्थंकर प्रभूके कायोत्सर्गासन तथा पद्मासन, कोई आसनसौं ज्ञान उपजै पण समवसरणमध्ये पद्मासन ही रहैं। फेरि बोलै—ज्ञानासनमें और उपदेशासनमें भेद बताया अैसैं किसही तीर्थंकरके ज्ञानासन तथा मोक्षासनमें भेद कह्या है क्या? तिसका उत्तर—सोलहमां तीर्थंकर शांतिनाथजीके ज्ञानासनविषै अर मोक्षासनविषै फेर है पूर्वोक्त इकवीस तीर्थंकर कायोत्सर्गासनसौं मुक्त हूवे तिनमें शांतिनाथजीका मोक्षासन कायोत्सर्ग आया, ज्ञान पद्मासनसौं हूवा इस प्रकार मोक्षासन कायोत्सर्ग ही आया और ज्ञानासनमें फेर हूवा। तदुक्तं महापुराणस्य शांतितीर्थंकरपुराणे श्लोकः—

श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन धवले दशमीदिने। पौषे मासि दिनस्यांते पल्यंकासनमास्थितः॥ १२॥
निर्ग्रंथो नीरजो वीतविघ्नो विश्वैकबांधवः। केवलज्ञानसाम्राज्याश्रिया शांतिराशिश्रियत्॥ १३॥

इन दोनों श्लोकनिविषैं शांतिनाथजीका ज्ञान पद्मासनसौं कह्या। मोक्षासन ऊपर कायोत्सर्ग

कहि आये । फेरि कोऊ पूछै—भगवान विहार कौनसे आसनसूं करैं ? तिसका उत्तर—जैसैं जंघाचारी साधु जंघाके बल पेंड भरके आकाशमें अंतरीक्ष चलैं तैसैं सोनेके कमलपै पेंड भरके अंतरीक्ष चलै । तदुक्तं भक्तामरस्तवने श्रीमानतुंगदेवैः—

उंन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र ! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति ॥

इसका अर्थ पंडित हेमराजकृत भाषा वचनिका में देखना । तथा भाषाविषैं—

विकसत सुवरन कनकदुति, नखदुति मिल चमकांहि ।
तुमपद पदवी जिहिं धरैं तिहिं सुर कमल रचांहि ॥

तथा चोक्तं एकीभावस्तवने—

पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं, हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः ।
सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे. श्रेयः किं तत् स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥

इसमें भी भगवान पांव धरके सोनेके कमलपै अंतरीक्ष चले हैं यह अर्थ आचार्य श्रीमुनि वादिराजने कहा है । तथा बडे हरिवंशपुराणविषैं भी कह्या है—

१ प्रफुल्लित सुनहरी कमलके समान कांतिवाले, उज्वल नखोंकी किरनों से सुशोभित तुम्हारे चरण हे जिन ! जिस जगह रक्खे जाते हैं उसी जगह देवतागण कमल रचदेते हैं ।

२ । हे भगवन् ! आपके विहार द्वारा तीन लोकों को पवित्र करते समय देवता जो कमल बिछाते हैं वह केवल आपके चरण मात्रके स्पर्श से सुवर्णकीसी कांतिवाला सुगंधित और लक्ष्मी का निवास स्थान हो जाता है फिर समस्त शरीर से ही जब आप का स्पर्श करनेवाला यह मेरा मन है तब प्रतिदिन मुझे कौनसे कल्याणों की प्राप्ति न होगी ? अर्थात् सबही कल्याण मिल जांयगे ।

पादपद्मं जिनेंद्रस्य सप्तपद्मैः पदे पदे। भुवेव नभसाऽगच्छदुद्गच्छाद्भिः मपूजितं ॥२४॥ सर्ग ३।
अर पुष्पदंतकृत आदिपुराण ग्रंथ है तिसमें भी यों कहा है। घत्ता छंद—

पहु अग्गाइ पक्षय परीघुलंती णलणाई सत्त सराजी चलती (?)।
जहं देउ पांव तहं कणयकमल सुरसंजोइ संचयउ विमलुं ॥

केवलीके हलन चलन क्रियाके वीचारमें एक और उदाहरण है। तेरहे गुणठाणे का नाम सयोग है। इहां प्रथम योगका अर्थ जानना चाहिये। तदुक्तं तत्त्वार्थसूत्रे—" कायवाङ्मनःकर्म योगः।" अर्थ—काय वचन मन संवंधी जो है कर्म कहिये क्रिया तिसे योग संज्ञा है। इस ही योगक्रियाके संबंधसूं सयोगगुणस्थान कहावे है। बारहवें गुणस्थान ताईं योगक्रिया इच्छापूर्वक है. तेरहवें गुणस्थान इच्छाविना होइ यातैं भगवानकैं हलन चलन क्रियाविषे यत्न नाही। और चौदहवे गुणठाणें मन वचन कायका अस्तित्व है परंतु इनकी पूर्वोक्त क्रिया नाहीं तातैं अयोग-संज्ञा है। कोई संदेह करै-हलन चलनादि क्रिया इच्छा विना कैसे होइ? तिसका समाधान दृष्टांत पूर्वक प्रवचनसार सिद्धांतविषैं उक्त है।

गाथा—ठाणणिसिज्जविहारा धम्मुवएसो हि णियदयो तेसिं।
अरहंताणं काले मायाचारव्व इत्थीणं ॥

छाया—स्थाननिषद्याविहाराः धर्मोपदेशश्च नियतयस्तेषां।
अर्हतां काले, मायाचार इव स्त्रीणां ॥

१ पेंड पेंड पर देव सात सात कमल भगवानके पदतले रखते जाते थे इसलिये वे पृथ्वीके समान आकाशमें भी गमन करते थे।

अर्थ—तेषां अर्हतां काले-तिन अर्हंतानिके कर्मके उदय कालविषैं स्थाननिषद्याविहाराः-स्थान कहिये ऊर्ध्व स्थिति ऊभे होना, निषद्या कहिये बैठना, विहार कहिये चलना ये तीनों कायकी क्रिया, च धर्मोपदेशः—बहुरि दिव्यध्वनिकरि धर्मोपदेश ये वचनकी क्रिया, नियतयः-ये च्यारो योगक्रिया अवश्य होंय। भावार्थ—काय वचनकी क्रिया केवलीकै मुख्यतासौं होय है। मन क्रिया मुख्य नाहीं, उपचार करि है। इस भांतिके औदयिक भावनिकरि योगाक्रियाका सद्भाव है। परंतु मोहके अभावसौं इच्छा विना सहज ही होइ है। दृष्टांत कहै हैं—स्त्रीणां मायाचार इव-स्त्रीजनकैं मायाचारकी नाईं। भावार्थ—स्त्रीजनोंके कुटिलाचार गुंथे विना आपुसैं ही होइ हैं तैसैं अर्हंतानिकैं योगक्रिया सहज ही होइ है। और भी इन च्यारि क्रियानिके च्यारि उदाहरण कहै हैं—जैसैं मेघका वरसना, स्थिर होइ रहना, चलना, गाजना ये च्यारि क्रिया जतन विना स्वभावही करि होइ हैं। तैसैं पूर्वोक्त च्यारो क्रिया केवलीकैं जाननी। ऊभे होनेका दृष्टांत वरसना, बैठनेका दृष्टांत थिर रहना, विहारका दृष्टांत चलना, दिव्यध्वनिका दृष्टांत गर्जना। ये च्यारि क्रियाके च्यारि दृष्टांत समझने। यह अर्थ प्रवचनसारकी तत्त्वदीपिका नामकी टीका तथा ब्रह्मदेव कृत टीका देख लिख्या है। इस प्रस्तावकौं कोई पंडित पूर्वोक्त स्थानका अर्थ कायोत्सर्गासन कहैं, निषद्याका अर्थ पद्मासन कहैं। तिसका विचार-इहां तौ हलन चलनरूप काययोग क्रियाका प्रसंग है। कायोत्सर्गासन तथा पद्मासन ए काययोगकी क्रिया नाहीं। तुम्हारे अभिप्रायमें कायोत्सर्गासन पद्मासन इस ओर फिरै नाहीं, स्थिर रहै। अहो मित्र! स्थिरकौं जोग संज्ञा नाहीं। मनो वचन कायकी क्रियाकी जोग संज्ञा है। क्रिया सिद्धांतविषैं हलन चलन

रूप कही है यातैं स्थिररूप कायोत्सर्गासन तथा पद्मासनकौं जोग संज्ञा क्यों करि संभवै ? योग विना सयोग गुणस्थान काहेसों कहावै ? अर कायोत्सर्गासन तथा पद्मासनकौं ही काययोगकी क्रियामें गिनिये तो ए दोनों आसन चौदहवें गुणस्थाने भी पाइए है उहां भी काययोगकी क्रिया हुई तो अयोग नाम गुणस्थान क्यूंकरि कहिये ? तातैं एकाग्रमनसों इस अर्थकौं विचारिये भाषा ग्रंथोंका भरोसा न करिए, मूलग्रंथोंका अभिप्राय विचारिये। अर अभी न सूझै तौ यह चरचा सुघट है। और भी एक पूर्वोक्त कथनमें है तहां विचारना।

सब अरहंतनिकैं स्थान, निषिद्या विहार धर्मोपदेश ए च्यारि योग क्रिया कहीं, मेघ संबंधी च रोके च्यारि दृष्टांत दीने तिसतैं अरहंतकैं च्यारो क्रियाका नियम हुआ। तो जहां कायोत्सर्गासन होइ तहां पद्मासन नाहीं, पद्मासन होय तहां कायोत्सर्गासन नाहीं, तो एक केवलीकै तीन ही क्रिया रहीं। च्यारिका नियम कुंदकुंदाचार्य एक मेघके दृष्टांतसों कर चुके सो न रह्या यातैं इस कथनमें संदेह करना नाहीं।

चरचा ३८ वीं। मोक्षविषै किंचिदून आकार चर्म्मदेहसों कह्या 'किंचूणा चम्मदेहदो सिद्धा' इति वचनात्। तिस किंचूनका क्या स्वरूप है ?

समाधान—जो किछू पूर्व प्रमाणसौं कमी होइ तिसै किंचून कहिए सो सिद्धपर्यायविषै चरम देहके प्रमाणसौं नखकेश कमी है इह किंचूनका अर्थ द्रव्यसंग्रह ग्रंथकी एक अपूर्व टीका है तहां लिख्या है। इहां कोई कहे—सिद्ध परमेष्ठी चरमदेहसूं किंचून कहे, ते नखकेश तौ चरमदेहसूं भिन्न हैं तिनकी अपेक्षा किंचूनता क्यूंकरि संभवै ? तिसका उत्तर—

नखकेशही की अपेक्षा चरमदेहसौं किंचून हैं। प्रदेशोंकी अपेक्षा तो चरमदेहकी समान हैं। फेरि वह बोल्या—चरमदेहके समान कहां कहे हैं। तिसका उत्तर—महापुराणके एकहत्तरवे पर्वविषै कहा है। तथा च श्लोक—

कालादिलब्धिमासाद्य भव्यो नष्टाष्टदुर्मदः। सम्यक्त्वाद्यष्टकं प्राप्य प्राग्देहपरिमाणभृत्॥
ऊर्ध्वव्रज्यास्वभावेन जगन्मूर्धनि तिष्ठति। इति जीवस्य सद्भावं जगाद जगतां गुरुः॥

चर्चा ३९—संसारमें समुद्घातविना जीव छोटी बडी देहके प्रमाण है, अनादिकालसौं कर्माधीन यूंही चल्या आया है सावरण दीपकी नाई। लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी अपनी अवगाहना प्रमाण कभी हुवा नाहीं। कर्मके आवरणरहित मोक्षमें देहप्रमाण क्यूं रह्या? लोक प्रमाण क्यू न हूवा?

समाधान—यह जीव निश्चयकरि लोकप्रमाण है सो शक्तिकी अपेक्षासूं है। समुद्घात विना कभी व्यक्तरूप होता नाहीं यातैं कर्मके आवरणसूं अनादि संसारविषैं छोटी बडी देह पाइ देहप्रमाण रह्या, कर्महीने छोटा बडा किया, मोक्षविषै कर्मका अभाव भया छोटा बडा कौन करै याहीतैं चर्मदेहके प्रमाण रह्या। जैसे कोई बजाज बडे थानकी घरी करै है, बजाज विना वह घरी ज्यूंकी त्यूं रहै तैसैं कर्मके अभावतैं देहका आकार ज्यूंका त्यूंही रहै है। इहां कोऊ पूछै—संसारमें

१ काल आदि लब्धियों के प्राप्त हो जाने से इस जीवके आठो कर्म नष्ट हो जात हैं कर्मोंके नष्ट होजानेसे सम्यक्त्व आदि आठ अविनाशी गुणोंकी प्राप्ति हो जाती है और पूर्व शरीर के परिमाण का धारक यह जीव ऊर्ध्व गमन स्वभाववाला होनेसे लोक के शिखर पर जा विराजता है।

आठकर्मविषै कूनसे कर्मकरि देहका आकार होहै अर कूनसे कर्मसौं विनसै है। तिसका उत्तर—
ज्ञानावरणादि आठकर्मविषै एक नामकर्म है। तिसकी तिराणवे प्रकृति हैं। तिनमें पैंसठि पिंड प्रकृति हैं, अट्ठाइस अपिंड प्रकृति हैं। पिंडप्रकृतिविषै एक संस्थान प्रकृति है। सो अनेक आकारकूं करै है। अर एक आनुपूर्वी[1] प्रकृति है सो अंतविषै पूर्वशरीरके आकारका नाश करै है। मोक्षपर्यायविषै समस्त कर्मप्रकृतिका अभाव हुवा है यातैं देहका आकार ज्योंका त्योंही रह्या। इहां कोऊ कहै—आनुपूर्वी प्रकृतिका अर्थ तौ हम और ही भांति सुन्या है। इह अर्थ कहां लिख्या है। तदुक्तं कर्मकांडटीकायां—

"पूर्वशरीराकारविनाशो यस्योदयाद्भवति, तदानुपूर्विनाम।" तथा चोक्तं बृहद्हरिवंशे—

उदयाद् यस्य पूर्वात्मशरीराकृतिसंक्षयः। चतुर्गत्यानुपूर्वी तत्तथागुरुलघूदितं॥

चर्चा ५०—लोकके अग्र ईषत्प्रभानाम अष्टम पृथ्वी सुनी है तिसके मध्य छत्राकार सिद्ध-शिला है। सो वह कैसे छत्रके आकार है अर उसका स्वरूप क्योंकर है?

समाधान—सर्वार्थसिद्धिसूं ऊपर बारहयोजन अष्टमपृथ्वी है तिसका विस्तार दक्षिण उत्तर राजू ७ पूर्वपश्चिम विस्तार राजू १ मोटाई योजन ८, तिस पृथ्वीके मध्यभाग रूपाके वर्ण, ताने छत्रके आकार तथा अर्ध गोलाकार सिद्धशिला है। मनुष्यक्षेत्रके प्रमाण मध्यविषै आठ योजन मोटा है। क्रमसौं मुटाई घटती जाननी किनारेसौंलेके नीचे ताईं। तिसके ऊपर दोयकोस

[1] जिस कर्मके उदयसे पहिले शरीरके आकारका नाश होता है उसे आनुपूर्वी कर्म कहते हैं और वह चार गतियोंके भेदसे चार तरहका है जैसे—मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी आदि।

समाधान

मोटा घनोदधि नाम वात है। तिसतैं एक कोस मोटा घन वात है। तिसपै पंद्रहसौ पचहत्तर धनुषमोटा तनुवात है। तिसके अंत अनंतानंत सिद्ध हैं। अनंत अव्याबाध सुखसूं तृप्त तिष्ठे हैं। तिनकूं त्रिकाल नमस्कार होउ। यह कथन श्रीनेमिचंद्राचार्यकृत त्रिलोकसारमें जानना।

चर्चा ४१ वी–राजूका प्रमाण असंख्यात योजनका है तिसके प्रमाणकी गाथा इस भांति सुनी है। तथाहि—णयणटमके काऊ जोयण लक्खा य जाइ जो देवो।

जो छम्मासी गमणो रज्जू इक्को य होय पम्माणं॥

अर्थ–नेत्रके टिमिकारेमें देव लाख जोजन जाये ऐसा जो छह महीना का गयन सो राजूका प्रमाण है इस गाथामें यह अर्थ है सो कैसें है?

समाधान–यह अर्थ दिगम्बर आम्नायका नाहीं, राजूका प्रमाण इसमें निपटही थोडा कह्या राजूका प्रमाण बहुत है, सो एकाग्रमनसू सुनो–

आगमोक्त पैंतालीस अंक प्रमाण व्यवहारीक पल्यकी रोमराशि है। तिस रोम राशिके रोमनिकौं एक २ भिन्न २ प्रकार करि थापै। तिस एक एक रोमनि पर असंख्यात वरसके समय की राशि धरै। फेरि इस समय राशिकूं एकत्र करि देइ। अव इहां विचारो वडी राशि हुई। इसही समय राशिसौं कल्पना करो, प्रथम ही कोई देवता पहिले समय लाख जोजन चलै, दूसरे समय दोय लाख जोजन चलै, तीसरे समय च्यारि लाख जोजन चलै, इस भांति समय प्रति दूना दूना जोजन चल्या जाय। ऐसी चाल चलते पूर्वकी सब समय राशी पूरी होय तब राजूकी एक मंजल हुई ऐसी पचीस कोडाकोडी मंजल पूरी होंइ तब आधा राजू होइ। इससौं दूना राजू होइ। इहां कोई कहै—

पचीस कोडाकोडी मंजलका आधा राजू कह्या, तिसतैं दुगुणा सारा राजू कह्या । पचास कोडाकोडी मंजलका सारा राजू क्यों न कह्या ? तिसका उत्तर—पचीस कोडाकोडी उद्धार पल्यके रोम प्रमाण सर्व द्वीप समुद्र हैं ते समस्त दिशागत आधे राजूमें हैं यातैं प्रथम आधे राजूका प्रमाण कह्या । पूर्व पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण दिशागत सब संख्यात द्वीप समुद्रका क्षेत्र लीजिये तब सारा राजू होइ । इसही राजूसूं तीनसै तेतालीस राजूका प्रमाण लोकका घनाकार है ऐसे लोक स्कंधके उठावनेकी शक्ति तीर्थंकर प्रभुके करतल विषैं कही है । इहां कोऊ पूछे—यह राजूका उदाहरण किस ही ग्रंथ विषैं प्रगट सुन्या नाहीं तैने कहासूं जाना ? तिसका उत्तर—बडे हरिवंशपुराणविषैं यह अर्थ है समझनेके वास्ते उदाहरण करके लिख्या है सो परीक्षा करि लेनी । तथाहि हरिवंशपुराणे—

प्रमाणयोजनव्यासस्वावगाहविशेषवत् । त्रिगुणं परिवेषेण क्षेत्रपर्यंताभित्तिकं ॥ ४६ ॥

---

१ एक ऐसा गढा खोदा जाय जो एक योजन चोडा, एक योजन लंबा, और एक योजन गहरा हो और उसमें मुह तक एकसे सात दिन तकके भेडके बच्चेके ऐसे कूट २ कर बालोंके टुकडे भरे जांय जिनके फिर टुकडे न हो सकें ऐसे बालोंके टुकडोंसे भरे हुए गढेका नाम व्यवहार पल्य है और उन टुकडोंमेंसे हरएक टुकडेको सौ सौ वर्षके बाद निकाला जाय तो जितने कालमें वह गढा खाली हो जाय उतने कालका नाम व्यवहारपल्योपम काल है ॥ ४८—४९ ॥ तथा उन्ही अविभागी बालोंके टुकडोंमेंसे हर एक टुकडेके जितने असख्यात करोड वर्षोंके समय होते हैं उतने ही कल्पनासे टुकडे किये जांय और उनसे उतना ही लंबा चौडा और गहरा गढा भरा जाय तो उस भरे हुए गढेका नाम उद्धार पल्य है और उन टुकडोंमेंसे एक एक समयके बाद एक एक टुकडा निकालनेपर जितनेकालमें वह गढा खाली होजाय उसकालको उद्धार पल्योपम काल कहते हैं । दश कोडाकोडी उद्धार पल्योंका एक उद्धार सागरोपम काल होता है । और ढाई सागरोपमकालोंके अर्थात् पचीस कोडाकोडी

सप्ताहांताविरोमाग्रैरापूर्य कठिनीकृतं । तदुदार्यमिदं पल्यं व्यवहाराख्यमिष्यते ॥
एकैकस्मिंस्ततो रोम्नि प्रत्यब्दशतमुद्धृते । यावताऽस्य क्षयः कालः पल्यव्युत्पत्तिमात्रकृत् ॥
असंख्येयाब्दकोटीनां समयैः रोमखंडितं । प्रत्येकं पूर्वकं तत्स्यात्पल्यमुद्धारसंज्ञकं ॥
कोटीकोट्यो दशैतेषां पल्यानां सागरोपमा । ताभ्यामर्धतृतीयाभ्यां द्वीपसागरसंमितिः ॥
साध्यो द्विगुणितो रज्जुस्तनुवातोभयांतभाक् । निष्पद्यंते त्रयो लोकाः प्रमीयंते बुधैस्तथा॥५१

पूर्वोक्त अर्थ इन श्लोकनिका जानना, लिखते विस्तार बढि जाय है।

चरचा ४२ वीं—अढाई द्वीपविषैं कछुवाकी टोंटीवत् मोक्षमार्ग निरंतर चलै है ऐसी कहनावत् है इसका स्वरूप क्यों कर है ? समाधान—निरंतर मोक्षकूं चले जांय इतने मनुष्य कहां ? एक आवलीके असंख्यात समय हो हैं। मनुष्य सब उनतीस अंक प्रमाण हैं तिनमें भी तीन च्यारि भाग स्त्री कहिये यातैं कछुवेकी टोंटीका दृष्टांत क्यूं करि संभवै ? इस चरचा का निर्णय तीन भेद करि है। मोक्षमार्गका अतंर १, मोक्षमार्गका अनंतर २, मोक्ष जीवनिकी संख्या ३। तिनका व्योरा— अंतरके भेद दोय एक जघन्य, दूजा उत्कृष्ट । जघन्य अंतर समय १, उत्कृष्ट अंतर मास ६। तिनका व्योरा—एक समय मोक्षमार्ग चलै दूजे समय मोक्ष मार्ग न चले, इस भांति एक समयके अंतरसौं मोक्षमार्ग चलै। इह जघन्य अंतर जानना। विरह कालकी अपेक्षा छह मास ताईं कोई जीव मोक्ष न जाइ इह उत्कृष्ट अंतर जानना।

उद्धार पल्योंके जितने बालोंके टुकडे हों उतने ही द्वीप समुद्र हैं। पच्चीस कोडाकोडी उद्धार पल्योंके जितने अर्धच्छेद है उनमें हर एकको दूना करनेपर जो प्रमाण निकले उसे राजू कहते हैं। इस राजूके दोनों ओर तनुवातवलय है और इससे तीनों लोकोंका प्रमाण किया जाता है ॥ ५१ सर्ग ७ वां ॥

दूजे अनंतरका ब्योरा—समयकी निरंतरतासौं संलग्न रूप मोक्षमार्ग चलै तिसे अनंतर कहिए। तिसके भेद २ – एक जघन्य, दूजा उत्कृष्ट। जघन्य अनंतर समय २, उत्कृष्ट अनंतर समय ८। तिसका ब्योरा-एक समय मोक्ष मार्ग चलै, दूसरे समय चलै इस भांतिसूं संलग्न दोय समय चलै, बढती समय न चलै तिसकौं जघन्य अनंतर कहिये। आठ समय लगालग मोक्ष-मार्ग चलै तिसे उत्कृष्ट अनंतर कहिये। तिसका ब्योरा-जब छहमासका उत्कृष्ट विरहकाल मोक्षका वीतै तब छहसै आठ जीव आठसमय माहिं लगालग मोक्ष जांय। प्रति समयके जीवनिकी संख्या-प्रथम समय बत्तीस ३२, दूजे समय अडतालीस ४८, तीजे समय साठि ६०, चौथे समय बह-त्तर ७२, पांचवे समय चौरासी ८४, छठे समय छ्यानवे ९६, सातवे समय एकसौ आठ १०८, अर आठवे समय भी एकसौ आठ १०८। इस भांति आठ समयका उत्कृष्ट अनंतर है। इस ही कथनकी अपेक्षातैं संसारविषैं आठ समय अधिक छह मासमें छहसौ आठ जीवसौं घाटि कभी मुक्त न होंय इह नियम है।

तीसरे जीवसंख्या भेदका ब्योरा—जघन्य जीव संख्या १, उत्कृष्ट जीव संख्या एकसौ आठ १०८, तिसका ब्योरा—एक समयविषैं एक जीव मुक्त होइ, तिसे जघन्य जीव संख्या कहिये। एक समयविषैं एकसौ आठ जीव मुक्त होंइ तिसे उत्कृष्ट जीव संख्या कहिये। एक समयमें इनसौं बढती जीव मुक्त न होंइ। इह नियम जानना॥

चर्चा ४३ वीं—आचार्य उपध्याय साधु इन तीनो पदोंमें उत्कृष्ट पद कौन है?

समाधान— उपदेशकार्यविषैं तो आचार्य मुख्य हैं। पठन पाठनमें उपाध्याय मुख्य हैं।

संयमकी साधनाविषैं साधूकी बडी शक्ति है मौनावलंबी परम विरक्त हैं यातैं साधु पद उत्कृष्ट है। तदुक्तं नीतिसारे—

पंचाचारतो नित्यं मूलाचारविदग्रणीः। चतुर्वर्णस्य संघस्य संघाचार्य इतीष्यते॥ १५॥
अनेकनयसंकीर्णशास्त्रार्थव्याकृतिक्षमः। पंचाचारतो ज्ञेय उपाध्याय समाहितः॥ १६॥
सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तो व्याख्यानादिषु कर्मसु। विरक्तो मौनवान् ध्यानी साधुरित्यभिधीयते॥१७॥

सामान्यपनै साधु तीनोकौं कहिये। विशेष विचारविषैं साधुपद साधुहीकौं जानना। जातैं आचार्य उपाध्यायकौं साधु कहैं, साधुकौं आचार्य उपाध्याय पद न कहिए। तिसका व्यौरा— अठाईस मूल गुणकी अपेक्षा तीनोकौं साधुपद समान है। साधुके अठाईस गुण जुदे हैं। तिनका विवरण—

दह दंसणस्स भेया भेया पंचेव हुंति णाणस्स। तेराविह सच्चरणं अडवीसा हुंति साहूणं॥

अर्थ—आज्ञादि सम्यक्त्व दश १०, मत्यादि ज्ञान पांच ५, अहिंसादि महाव्रत पांच ५, इर्यादिसामिति पांच ५, गुप्ति ३, ये साधु महाराजके अठाईस गुण जुदे जानने। इहां कोऊ पूछै—साधुके अठाईस मूल गुण किस अपेक्षासे हैं और ए अठाईस गुणकी कौन अपेक्षा है? तिसका उत्तर—

अठाईस मूलगुणका कथन एक साधुकी अपेक्षा करि है। और अठाईस गुणका कथन नाना साधुकी अपेक्षा करि है। यातैं अठाईस मूल गुण विना साधु पद सर्वथा न होय। और अठाईस गुण साधुके यथा योग्य पाइए।

चर्चा ४४ वीं—मूलगुणविषैं पांच महाव्रत, पांचसमिति लीनी, तीन गुप्ति क्यों न लीनी ?

समाधान—तीन गुप्ति मूल गुणमें नाहीं, उत्तर गुणमें हैं । मूल गुण वालेसे उत्तरगुणवाला उत्कृष्ट है। याहीतैं आचार्य उपाध्यायसूं साधुपद श्रेष्ठ है । आचार्य उपाध्याय उपदेशके अधिकारी हैं। इनके सदा काल मौन संभवै नाहीं। मौनव्रत विना गुप्ति क्योंकर होय ? इस प्रकार गुप्ति तीन साधु ही कैं जाननी।

चरचा ४५ वीं—अट्ठाईस मूलगुणमें सम्यक्त्व कोई न कह्या । साधुके अठाईस गुणविषै दश सम्यक्त्वमें कोई सम्यक्त्व होइ यह कह्या, तिसका हेतु क्या ?

समाधान—अट्ठाईस मूलगुण द्रव्यलिंगी साधु भी पाले, यातैं इनमें सम्यक्त्वका नियम नाहीं साधु पद सम्यक्त्व विना न संभवै यातैं साधुके गुण विषै सम्यक्त्व कह्या। इहां कोऊ पूछै—साधुके अठाईस गुणविषैं पांच ज्ञान कहे। ते ज्ञान आचार्य उपाध्यायके क्यों न होंइ ? तिसका उत्तर—साधु पद विना केवलज्ञान किसीके न होइ, आचार्य उपाध्यायभी जब साधु पदकौं प्राप्त होइ, श्रेणी माडै तब साधु पद संभवै तब ज्ञान होइ च्यार ज्ञान साधारण सबहीकैं पाइये। यातैं पांचो साधुहीकैं कहे।

चरचा ४६ वीं—साधुके चौरासी लाख उत्तरगुण सुणे हैं। ते कौनसे हैं ?

समाधान—हिंसा १, अनृत २, स्तेय ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, क्रोध ६, मान ७, माया ८, लोभ ९, रति १०, अरति ११, भय १२, जुगुप्सा १३, मनोदुष्टत्व १४, वचनदुष्टत्व १५, कायदुष्टत्व १६, मिथ्यात्व १७, प्रमाद १८, पिशुनत्व १९, अज्ञान २०, इन्द्रिय निग्रह २१, ये इकईस

दोष हुये। अतिक्रम १ व्यतिक्रम २ अतीचार ३ अनाचार ४ ये च्यार दोष पूर्वोक्त इकईस दोष सौं गुणैं तब चौरासी दोष होंइ। इनकौं त्यागै चौरासी गुण होवैं। ये ही सौ काय संयमसूं गुणिये तो चौरासीसै गुण होवैं। फेरि दश आलोचना शुद्धिसौं गुणिये तो चौरासी हजार गुण होवैं, दश धर्मसूं गुणिये तब चौरासी लाख उत्तर गुणका जोड होय। यह विवरण षट् पाहुडकी टीकाविषैं जानना।

इहां कोई पूछै—हिंसादि दोषका परिहार पूर्वोक्त मूलगुणविषैं आया और उत्तर गुणमें भी आया तिसका हेतु क्या? समाधान—हिंसादि दोषोंका परिहार सर्वथा उत्तर गुणवाला ही करै, मूलगुणवालापै उत्तर गुण सम्पूर्ण न होंइ। यातैं बडी शक्तिसूं उत्तर गुण वालेका परिहार निर्मल है। यातैं हिंसादिका परिहार उत्तर गुणमें भी गिन्या। उतर गुणवाले पै मूलगुण सम्पूर्ण पलैं, मूलगुणवाले पै उत्तर गुण सम्पूर्ण न पलैं।

चर्चा ४७वी—अठाईस मूलगुणमैं महाव्रतविषै वस्त्रत्याग आया कि नाही? फेरि वस्त्रत्याग भी जुदा क्यों कहा?

समाधान—अट्ठाईस मूल गुणविषै पंच महाव्रत साधारण हैं मुनिराज भी धरै हैं अर अर्जिकाकैं भी उपचारसें महाव्रत कहा है। जो क्रिया किसी अपेक्षासों संभवै तिसे उपचार कहिये। अर जो सर्वथा न संभवै तिसका उपचार न होइ यह सर्वत्र जानना। अर्जिका देवी अपनी सम्पूर्ण शक्तिसौं गृहत्याग करचुकी वस्त्रत्याग करनेकूं असमर्थ है अर इसके एक वस्त्रत्याग विना हिंसा अनृतादि दोषका मुनिवत् परिहार है। इस अपेक्षा अर्जिकाके महाव्रतका उपचार

गोम्मटसार ग्रंथविषै कह्या है। ऐसैं वस्त्रत्यागविना महाव्रत संभवै, मुनिपद वस्त्रत्याग विना सर्वथा न होय। याईतैं अट्ठाईस मूलगुणाविषै वस्त्रत्याग जुदा जुदा कह्या।

इहां कोऊ पूछै—ऐलक श्रावक भी त्रसथावरकी रक्षा करता हिंसादि दोषका सर्वथा त्यागी है। साडी सते तो अर्जिकाके महाव्रत कहे, तो कोपीनमात्र परिग्रहसौं उनके महाव्रत क्यों न कहिये? तिनका उत्तर—अर्जिकाकै साडीविषै ममत्व नाहीं, यातैं महाव्रत संभवै, ऐलकका कोपीनविषै ममत्व है, समर्थ होय राखै है यातैं महाव्रत न कहिये। तदुक्तं श्लोकः—

कौपीनेऽपि समूर्च्छत्वान्नार्हत्यार्यो महाव्रतं। अपिभाक्तममूर्छत्वात् शाटिकेऽप्यार्यिकाऽर्हति॥

अस्यार्थः—'आर्यः भाक्तं अपि महाव्रतं न अर्हति।' आर्य कहिये उत्कृष्ट श्रावक है सो 'भाक्तं अपि' कहिये उपचार करिभी 'महाव्रतं न अर्हति' महाव्रतकौं योग्य न होय है। काहेतैं? 'कौपीनेऽपि मूर्छत्वात्, कहिये कोपीनविषै भी ममत्वके सद्भावतैं। भावार्थ—ऐलक श्रावक ममत्वभाव सूं कोपीन राखै है यातैं तिसके उपचार करिभी महाव्रत न कहिये। 'आर्यिका शाटिकेऽपि महाव्रतं अर्हति' आर्यिका है सो साडीके संतै भी महाव्रतकूं योग्य होय है। काहेतैं? 'अमूर्छत्वात' कहिये ममत्वके अभावतैं। भावार्थ—आर्यिका साडी राखै है परन्तु इसविषै ममत्व नाहीं, असमर्थपनै राखै है। यातैं इसके उपचारसूं महाव्रत कहिये। इहां कोऊ पूछै—आर्यिका पांचवे गुणस्थानवर्ती है। छठे गुणस्थान विना महाव्रत क्यूंकरि कहिये? तिसका उत्तर—

छठे गुणस्थान विना महाव्रत होय है। महाव्रत विना छठा गुणस्थान न होय है। जातैं गुणस्थान भावतैं है क्रिया द्रव्यतैं है। जैसैं भावकरि मिथ्यादृष्टि तथा अव्रती देशव्रती छठे

गुणस्थानकी क्रिया पालकैं ऊपर ग्रैवेयक तक जाइ है। ऐसैं गोम्मटसारके उत्तरार्ध विषै कहा है। इतने परभी कोई कहे–स्त्रीकौं महाव्रतका निर्देश तुमने किसी ग्रंथविषैं भी देख्या है? तिसका उत्तर–बडे पद्मपुराणजी विषैं सीताजीने महाव्रत लिये, यों कह्या है। तथाहि–

ततो दिव्यानुभावेन सावद्यपरिवार्जिता, संवृता सा वृणा साध्वी वस्त्रमात्रपरिग्रहा ॥
महाव्रतपवित्रांगा सदा संवेगसंवृता। देवासुरसमायोग्यं ययौ सोद्यानमुत्तमम् ॥

औरभी ग्रंथविषैं ऐसा उदाहरण आया है।

चरचा ४८ वीं–आचार्य उपाध्याय विषैं परस्पर क्या अंतर है?

समाधान–गणधर देवकौं मुख्य आचार्य पद है यातैं द्वादशांगके कर्ता हैं। उपाध्याय द्वादशांगके पाठी हैं यह अंतर है।

चरचा ४९–रात्रिके समय मुनिराज हलन चलनादि क्रिया तथा वचनालाप करैं कि नाहीं?

समाधान–कायोत्सर्ग योग धर्या होइ तो न करैं, नातर कछु कारण होइ तो करैं। तिसका उदाहरण–मिथिलापुर विषै सागर चंद्राचार्यनै अर्ध रातिके समय श्रवण नक्षत्र कंपायमान देख्या अवधिसौं साधुनिकैं उपसर्ग जान्या। पुष्पदंत नाम क्षुल्लक विद्याधरके पूछेंसूं धरणीभूषण पर्वत पर विष्णुकुमार मुनिकूं विक्रिया लब्धि बताई। तब विष्णुकुमार हस्तिनापुर गये उपसर्ग निवारण किया। तथा यक्षल नाम राजकुमार आधी रातिमें खड्ग लेके एक स्त्रीके निमित्त

१ इसके बाद सीताने समस्त हिंसादि पापोंका त्यागकर दिया, केवल साडी मात्र परिग्रह रक्खा महाव्रतोंसे पवित्र अंगवाली संवेगसे भूषित वह सुर असुरोंके योग्य उद्यानकी तरफ चली।

चल्या। मार्गविषैं अवधिज्ञानी साधू देखकर नमस्कार किया। साधू बोले—हे कुमार! जिसके निमित्त तू जाय है सो तेरी माता है। पूर्वका संबध कहिकैं उपकार किया। तथा धनदत्त वैश्य की पर्यायविषैं रामजीके जीवने तृषातुर होय मुनिके आश्रमविषैं रातिको पानी मांग्या। तहां मुनिराजने मधुर वचनसौं शांतिकर अणुव्रत दिये। यह कथन पद्मपुराणमें हैं। इत्यादि उदाहरण जानना।

चर्चा ५० वीं—कायोत्सर्गका क्या स्वरूप है?

समाधान—कालकी मर्यादाकरि देहादिसूं निर्ममत्व होय एकासन अडोल रहै। हलन चलनादि मनो वचन कायकी क्रियाका निरोध होय तिसे कायोत्सर्ग कहिए। विस्तार मूलाचारविषैं देखना।

चर्चा ५१ वीं—कायोत्सर्गविषैं आसन कौनसा होइ?

समाधान—एक कायोत्सर्गासन, दूजा पद्मासन मुख्य ए दोय आसन हैं। तिस कायोत्सर्गासनकी मुद्राके च्यारि भेद हैं—बैठेसू खडे होना भेद १, खडेसूं बैठा होना २, बैठे सो बैठे रहना ३, खडे सो खडे रहना ४। तिसका व्योरा—कोई साधू बैठे आसन तिष्ठै हैं कायोत्सर्ग की वार खडा होइ कायोत्सर्ग मांडै। ऐसैं च्यारो भेद समझ लेना। यह भी विवरण मूलाचारविषै जानना।

चर्चा ५२ वीं—वर्षा कालविषै मुनीश्वर विहार करैं कि नाहीं?

समाधान—आषाढ सुदी पूर्णमासीकौं जिस नगरके निकट स्थलविषैं आइ वसैं तहांसौं

और देशांतरविषैं कार्तिक सुदी पूर्णमासी ताईं जांय नाहीं। पर्वतकी गुफा, नदीका तट, वृक्षका मूल, सूना घर, चैत्य मंदिर इत्यादिक प्रासुक जायगा देख यथाशक्ति वास करैं। बडी शक्ति होइ तो चातुर्मासी योग थापैं। हीन शक्ति होइ तो प्रासुक मार्ग देख वस्तीमें पारणा निमित्त जांय। इसका प्रसंग बृहत्पद्मपुराणके सप्तऋषिके उपाख्यानमें जानना।

चर्चा ५२ वीं—मुनि आहारके निमित्त चर्या किस प्रकार करैं?

समाधान—प्रथम सूर्योदयविषै साधु प्रातःकालकी सामायिक समाप्त करै तिस पीछे दोय घडी दिन चढैं श्रुतभक्ति गुरुभक्ति पूर्वक स्वाध्याय ग्रहै सिद्धांतादिसंबंधी वाचना पृच्छनादि करै। मध्याह्नविषै दोय घडी बाकी रहै तब श्रुतभक्ति पूर्वक स्वाध्याय समाप्त करै। यथावसर मल मूत्रका त्यागकरि आवै। शुद्ध होय मध्याह्नकी देवबंदना करै। आहारके निमित्त नगरादिविषैं च्यारि हाथ धरती शोधता एकाग्रमनसौं गमन करै। बहुत शीघ्र न चलैं, मंद भी न चलै। धनाढ्य तथा निर्धनके घरकूं विचारै नाहीं। मार्गमें वार्तालाप करै नाहीं। नीचकुलविषै प्रवेश न करै। सूतक दुःखित शुद्ध कुलविषै भी न जाय, कपाट मुंदे होंइ, द्वारपाल प्रमुख मनै करै तो न जाय। योग्य गृहकी पंगातिविषैं भूमि निरखता गृहस्थके आंगनमें चौथाई तथा तीसरेभाग जाइ, मौनावलंबी याचनारहित, अंगकी चेष्टा विकार वर्जित, खडा होय जैसे रत्नका व्योपारी अदीनचित्तसौं रत्न दिखावै तैसैं देहमात्र दिखावै, विनयपूर्वक गृहस्थ प्रतिग्रहण करै तब तिष्ठै। सिद्धनिकी भक्तिकरि विधिपूर्वक खडा होय प्रासुक आहार लेय छिद्ररहित पाणिपात्रविषै धरि सुरसुरी शब्द विना आहार करै। आहार समय स्त्रीके स्तन जंघादिकनिकी ओर दृष्टि करै नाहीं, इस प्रकार

पूर्णोदर होय, अंतराय आवै तो अपूर्णोदर होइ मुख हस्त प्रक्षालन करै। चैत्यालयादिविषैं जाइ प्रत्याख्यान लेइ प्रतिक्रमण करै। यह साधुकी चर्याविधि सामान्यपनै लिखी है विशेषविधि यत्याचार शास्त्रतैं जाननी। इहां कोई कहे–हम तो यों सुनी है, पडिगाहै विना गृहस्थके आंगन साधु आवै नाहीं, ऊपर लिख्या–आंगनके तीसरे भाग आवै। सो इह मर्यादा कहां कही है? तिसका उत्तर–पद्मनंदिके गुरु वीरनंदिजी सिद्धांतचक्रवर्ती तिनका रचा आचारसार ग्रंथ है तहां कही है। तथाहि–

क्रमेण योग्यागारालिंपर्यटन् प्रांगणं मितं। विशेन्मौनी विकारांगसंज्ञायांचोज्झितो यतिः॥१०८अ.५।

मध्यान्हकी वेलाविषैं द्वारापेक्षणव्रतवाले गृहस्थ द्वारकी ओर देखा करै हैं। यह नित्य नियम अपने गृहांगणमें खडे साधै, पुन्य जोग साधु आवै तब रोमांचित होय यथोक्तविधिसूं प्रतिग्रहण प्रणाम करि थापै, मुनि–योग्य पवित्र गृह विषैं आहार देइ। और जिसके द्वारापेक्षणव्रतका नियम नाहीं, तिनके भाग्योदयतैं साधु गृहांगणमें आवैं तो प्रतिग्रहण प्रणाम करि आहार देइ। तिसका उदाहरण–अयोध्याविषैं सप्त ऋषि सीताके मंदिरमें आकाशसूं उतरे प्रतिग्रहणादिकरि आहार दीया। तदुक्तं बृहत्पद्मपुराणे (सो ही बडे पद्मपुराणजीमें कहा है)—

अथ निर्वाणधामानि परिसृत्य प्रदक्षिणं। मुनयो जानकीगेहमवतेरुः शुभायनाः॥
वहती सम्मदं तुंगं श्रद्धादिगुणशालिनी। परमान्नेन तान् सीता विधियुक्तमपारयत्॥

(१) सप्तऋषि तीर्थस्थानोंकी वंदना कर सीताके घर उतरे। श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित सीताने भी बडे ही हर्षके साथ परमान्नसे उनको पारणा कराई।

तथा चोक्तं महापुराणे भगवच्चर्यायां (श्रीमहापुराणमें भी ऋषभनाथ भगवानकी चर्या के समय लिखा है)—

युगप्रमिति मध्याह्नं पश्यन्नातिविलंबितं । नातिद्रुतं च विन्यस्य पदे गच्छन्न लीलया ॥
गेहं गेहं यथायोग्यं प्रविशन् राजमन्दिरं । प्रविष्टुकामोप्यगमत् सोऽयं धर्मसनातनः ॥

इत्यादि अनेक जायगै इस प्रसंगविषै यही कथन है। तथा मथुराविषैं अतिमुक्तक मुनि कंसके घर आहार निमित्त आये, कंसकी स्त्री जीवद्यशा हास्य कीनी, मुनिराजने होनहार था सो कहा। पहिले प्रतिग्रहणहीसों साधू गृहस्थके गृहांगणविषैं जाय तो यह कथा क्यों कर संभवे? यातैं गृहस्थके आंगणविषैं साधु जाय तब प्रतिग्रहणादि क्रियापूर्वक आहार लेंहि।

चर्चा ५४ वीं—मुनीश्वर जब नगरादिविषैं चर्याकौं जांय तब पांच घरसौं वढती न जांइ ऐसैं सुनी है सो क्यों कर है?

समाधान—वृत्ति परिसंख्यान तपके निरूपण विषैं यही रीति कही है। एकादि गृहकी संख्या करि साधू नगरादिविषैं चर्याकौं जाय, पांच सात घरका नियम नाहीं, यह कथन सर्वार्थसिद्धि टीका विषैं देखना। यहां कोई कहे—जोगीरासमें पंच घरकी प्रतिज्ञा जिनदासजीने लिखी है। सौ क्यूं करि लिखी है? तिसका उत्तर—जिनदासजीने पांच घरकी भावना भाई है वृत्तिपरि-

(१) युगप्रमाण भूमि निरखते दुपहरक समय न तो बहुत धीरे २, न बहुत जल्दी २, न लीलापूर्वक पैरोंको रखते हुए श्री आदिनाथ स्वामी योग्य घरोंमें प्रवेश करते २ राजमंन्दिरमें प्रवेश करनेकी इच्छासे पधारे।

(२) भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारादिविषयसंकल्पचित्तावरोधो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यर्थमवगंतव्यं। १९, अ० ९।

संख्यान व्रतकी मर्यादा न कही है। तिसका उदाहरण—श्रीऋषभदेवजी हस्तिनापुर विषै आहार निमित्त आये। जैसैं चंद्रमा नक्षत्रविषै क्रमसूं संचार करै है ऐसैं चांद्री चर्याके क्रमकरि गृहस्थनिके घर घर प्रवेशकरि राजमन्दिर प्रति आये। सूधे राजमन्दिरहीकौं न गये। यातैं पांच घरकी प्रतिज्ञाका नियम न संभवै। तदुक्तं वृहद्धरिवंशे भगवच्चर्यायां (सो ही बडे हरिवंशपुराणजीमें कहा है)—

धाम धाम निजं धाम प्रगटन्नीचशीतगुः। अस्मदीयमयन्नाथो निशांताजिरमासवान् ॥

अस्यार्थः—श्रीऋषभनाथजीकी चर्याविषैं हस्तिनापुरके स्वामी प्रति सिद्धार्थ नाम द्वारपालके वाक्य इस श्लोकमें जानना। तथाहि—'नाथः अयन् अस्मदीयं निशांताजिरं आसवान्' अहो राजन्! ऋषभदेवजी विहार करते हमारे गृहांगण प्राति आये 'धाम धाम निजं धाम किरन्' गृहस्थनिके घर २ प्रति निज तेज प्रगट करते। कौनकी नाईं 'शीतगु इव' चंद्रमाकी नाईं।

चरचा ५५ वीं—ऋषभदेवजीने इक्षुरसका आहार लिया सो सचित्त है कि अचित्त है?

समाधान—परम विवेकी भगवान् सचित्त आहार क्यों कर लेंयगे। इक्षुरस अचित्त है। तदुक्तं स्वामिकार्तिकेयटीकायां—

सक्कं पक्कं तक्कं अंबललवणेण मिस्सियं दव्वं। जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥

अस्यार्थः— जो द्रव्य सूका परिपक्क हुआ, तप्त हुआ, अमलरससौं मिला, लवणसौं मिला, तथा कोल्हू घरटी आदिसौं छिन्न हुआ सो सब प्रासुक जानना। इहां कोई फेरि कहे—सब मीठा ईखका रसही है यातैं और मीठा लिया होयगा। तिसका उत्तर—आदिपुराणविषैं पौंडेका इक्षुरसही प्रगट किया है यातैं और विकल्प काहेको उपजाइये। तथा च श्लोकः—

श्रेयान् सोमप्रभेणामा लक्ष्मीमत्या च सादरं। रसमिक्षोरदात्प्रासुमुत्तानीकृतपाणये॥
पुण्येक्षुरसधारां तां भगवत्पाणिपात्रके। स समावर्जयन् रेजे पुण्यधारामिवामलां॥

चरचा ५६ वीं—जंघाचारी साधु जंघापै हाथ धरिकैं आकाश गमन करैं ऐसी कहनावत है। सो क्यूं कर है?

समाधान—चारण ऋद्धिके दोय भेद हैं। एक जंघाचारी दूजा आकाशचारी। जंघाके बल पैंड भरि भूमिवत् आकाशमें अंतरीक्ष चले जांइ तिनकौं जंघाचारी कहिये। तथा जलादिपै पैंड भरिकैं चलैं जलके जीवनिकी विराधना न होइ यह उनकी रिद्धिका अतिशय है। अर दूसरे आकाशचारी जिस आसनसूं होंइ तिसही आसनसौं आकाशमें चलैं। तदुक्तं—

जंघावालिश्रेणिफलाम्बुतंतुप्रसूनवीजांकुरचारणाह्वाः।
नभोंगणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

ऋद्धि संबंधिविशेष कथन चामुण्डराय कृत चारित्रसारमें देखना।

चरचा ५७ वीं—किनही मुनिराजने सम्यक्त्व वम दीया होइ तब तिस काल यह पूज्य होइ कि नाहीं?

समाधान—चारित्र भष्ट न होइ तो यथाजात जिनलिंग सदाही पूज्य है। इहां कोई कहै—जो जिनलिंग सदा पूज्य है तो जिनलिंगधारी द्रव्य लिंगी साधुकौं भी पूज्यता आई। तिसका उत्तर—भावलिंगी साधुकरि द्रव्यलिंगी पूज्य नाहीं गृहस्थकरि पूज्य है। यातैं गुणाधिकका विनय करना जोग्य है। गुणकरि हीन होइ, तिसका विनय प्रवचनसार सिद्धांतविषैं निषेध्या है। भावलिंगी

मुनि गुणाधिक है। द्रव्यलिंगी मुनि गुणकरि हीन है यातैं भावलिंगी मुनिराज है सो द्रव्यलिंगीका विनय न करै अभव्यसेनकी नाईं। अर गृहस्थसूं द्रव्यलिंगी गुणाधिक है। यातैं गृहस्थकरि विनय जोग्य है। इहां कोई कहै–सम्यग्दृष्टि गृहस्थ द्रव्यलिंगी मुनिका विनय कैसें करै? तिसका उत्तर– मिथ्यात्वसे सम्यक्त्व पूज्य है सम्यक्त्वसे चारित्र पूज्य है। श्रेणिक राजा क्षायिक सम्यग्दृष्टी था, जिनलिंग देख मायाचारी साधूका प्रथम विनय किया। पीछे शिक्षा दीनी। कह्या-'जो तू इह लिंग धारिकैं ऐसा विपरीत कार्य करेगा तो तुझने गर्दभारोहण करोंगा। इस भांति ऐसैं विपरीत जानि जिनलिंगीका विनय भंग न किया तातैं जिनलिंगी सर्वत्र पूज्य है। और जिनलिंग विना साधु तीर्थंकर प्रभुकूं नमस्कार न करै। तदुक्तं यशस्तिलकनाम्नि महाकाव्ये (सो ही यशस्तिलक चंपूमें कहा है)—

मान्यं ज्ञानं तपोहीनं ज्ञानहीनं तपोऽर्हितं। द्वयं यस्य स देवः स्यात् द्विहीनो गणपूरणं।

इहां कोऊ फेरि पूछै-द्रव्यलिंगी साधुका विनय सम्यक्त्वका दोष है कि चारित्रका दोष है? तिसका उत्तर–सम्यक्त्वका अतीचार नाहीं, चारित्रका अतीचार है। यातैं चारित्रवान भावलिंगी है सो द्रव्य लिंगीका विनय न करै और गृहस्थके चारित्र नाहीं यातैं यह करै। पुण्यास्रव नाम ग्रंथविषैं यह अर्थ श्रेणिकराजाके प्रसंगविषैं देखना। अर जिनलिंगका विनयकरि सम्यक्त्वका अतीचार क्योंकर संभवै? कुलिंगका विनय सम्यक्त्वका अतीचार है। तदुक्तं समंतभद्र देवैः (सो ही समंतभद्रस्वामीने कहा है)—

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्। प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥

इस श्लोकमें सम्यग्दृष्टिकरि कुदेवकौं, वा कुशास्त्रकौं, वा कुलिंगीकौं विनय प्रणाम मना किया। जिनलिंगीका विनय प्रणाम गृहस्थकूं किस ही शास्त्रमें मने किया नाहीं। अर जो द्रव्य लिंगी मुनि आत्मज्ञान शून्य है, मोक्षका अधिकारी नाहीं है तो भी उसका जिनलिंग पूज्य है, जिनलिंग देखि विनय न कीजै तो जिनलिंगकी अवज्ञा होइ, श्रीजिनसेनाचार्यने पात्रकी पंगतिमें गिन्या है। तथाहि आदिपुराणमध्ये विंशतितमे पर्वणि—

पात्रं रागादिभिर्दोषैरस्पृष्टो गुणवान् भवेत्। तच्च त्रेधा जघन्यादिभेदैर्भेदमुपेयवत् ॥
जघन्यः शीलवान् मिथ्यादृष्टिश्च पुरुषो भवेत्। सद्दृष्टिर्मध्यमं पात्रं निःशीलव्रतभावनः ॥
सद्दृष्टि शीलसंपन्नं पात्रमुत्तममिष्यते। कुदृष्टिर्यो विशीलश्च नैव पात्रमसौ मतः ॥
कुमानुषत्वमाप्नोति जंतुर्ददपात्रके। अशोधितमिवालाबु तद्धि दानं प्रदूषयेत् ॥
आमपात्रे यथा क्षिप्तमिक्षुक्षीरादि नश्यति। अपात्रेऽपि तथा दत्तं तद्धि स्वं तच्च नाशयेत् ॥

इन श्लोकनिविषैं तीन पात्र कहे, चौथा अपात्र कह्या। जघन्य पात्र द्रव्य जिनलिंगी, मध्यम अविरत-सम्यग्दृष्टि उत्तम द्रव्यित भावित जिनलिंगी। व्रत सम्यक्त्वरहित होइ सो पात्र नाहीं यातैं अपात्र है। तिसके दानका फल कुमानुष होय। और वह द्रव्य जिनलिंगी साधु यथार्थ धर्म

(१) रागद्वेष आदि दोषों से रहित गुणवान मनुष्य पात्र (दान के योग्य) कहलाता है। उसके तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्तम। व्रती मिथ्यादृष्टि जघन्य पात्र हैं, व्रीत शील की भावनाओं से हीन—अव्रती सम्यग्दृष्टि मध्यम पात्र कहलाता है और जो व्रत संपन्न भी है तथा सम्यग्दृष्टि भी है वह उत्तम पात्र है। एवं जो न तो सम्यग्दृष्टि ही है और न व्रती ही है वह अपात्र है—दानके अयोग्य है। ऐसे अपात्र में दिये गये दान का फल कुमनुष्य योनि की प्राप्ति है। जैसे कच्चे घडे में रक्खा गया ईखका रस वा दूध शीघ्र ही नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अपात्र में दिया गया दान भी यथार्थ फल को नष्ट कर देता है।

का उपदेष्टा (उपदेशदेता) है। उसके उपदेशसूं भव्यजीव मुक्त होय हैं यातैं भी विनय जोग्य है। तदुक्तं वृहद् हरिवंशे—

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा। दातारं विस्मरन् पापी किं पुनर्धर्मदेशकं॥[२]

यहां एक और भी उदाहरण विचारना। विद्यमान भरत क्षेत्रविषैं सम्यग्दृष्टि जीव तीन चार कहे। तिनमें भी यह नियम नाहीं—मुनि हैं कि गृहस्थ हैं। अर च्यारि प्रकारका संघ काल-के अंतताईं रहेगा तो तहां ताईंके मुनि आर्जिका सब अपूज्य हुए। सो कैसे संभवै ? यातैं जिन-लिंगधारी द्रव्यलिंगी तथा भावलिंगी, सब पूज्य हैं। तदुक्तं यशस्तिलकनाम्नि महाकाव्ये—

कालें कलौ चले चित्ते देहे चाम्लादिकीटके। एतच्चित्रं यथाद्यापि जिनरूपधरा नराः॥[३]

यथा पूज्यं जिनेंद्राणां रूप्यलेपादिनिर्मितं। तथा पूर्वमुनिच्छायाः पूज्याः संप्रति संयताः॥

यहां यह सिद्धांत हुवा जैसे जिन मुद्राके चिन्हसों धातु पाषाणकी मूर्ति पूज्य है तैसैं यथोक्त जिनलिंगीकेसा होनेसूं द्रव्यलिंगी साधु पूज्य है। प्रवचनसारमें द्रव्यलिंगीका विनय मना किया है सो मुनिकी अपेक्षातैं जानना। गृहस्थकी अपेक्षातैं नाहीं।

---

(२) एक अक्षर व पद व पदार्थ के सिखाने वाले को भी भूल जाने वाला मनुष्य पापी होता है तब धर्म के उपदेशक को भूल जाने—विनय न करने से तो क्या नहीं होगा।

(३) यह कलि तो काल है, मनमें अधिक चंचलता रहती है, और शरीर हीन शक्ति का धारक है तो भी जिन रूपधारी—दिगंबर मुनि दीख पडते हैं यही आश्चर्य है। इसलिये जिस प्रकार धातु या पाषाण आदि की जिनेंद्र भगवान् की मूर्तियां पूज्य हैं उसी प्रकार पूर्वकालीन मुनियों के रूपको धारण करने वाले आजकाल के संयमी लोग पूज्य हैं। अर्थात् मुनियोंके जितने गुण कहे है उन सबका मिलना आज कल कठिन है इसलिये जितने गुणवाले मिलें वे ही पूज्य हैं।

चरचा ५८ वीं–ऊपर अपात्रका दान निष्फल कह्या, जासूं कुमानुष होय। हम अपात्रके दानका फल नरक निगोद सुन्या है सो क्यूं करि है?

समाधान—दानका फल नरक निगोद न होय। तदुक्तं प्रवचनसारासिद्धांते कुंदकुंददेवैः–

अविदियपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु पुरिसेसु। जुत्तं कदं य दंत्तं फलदि कुदेवेसु मणुवेसु॥

अर्थ—'अविदितपरमार्थेषु पुरुषेषु' नाहीं जान्या है परमार्थ जिनने अैसे जु हैं अज्ञानी मनुष्य तिनविषैं 'च' पुनः 'विषयकषायाधिकेषु' बहुरि जे विषयकषायकरि अधिक हैं तिनविषैं 'जुष्टं कृतं वा दत्तं' बहुत प्रीतिसूं सेवना, वैयावृत्त्यादिक करना, आहारादिका देना सो 'कुदेवेषु कुमनुष्येषु फलति।' नीच देवनिविषैं नीच मनुष्यनिविषैं फले है। भावार्थ–जे अज्ञानी छद्मस्थनिनैं विपरीत गुरु थापे हैं, आत्मज्ञानविना अर आचरण विना परमार्थशून्य हैं याहीतैं विषयकषायके अधिकारी हैं अैसे गुरुनिकी सेवा भक्तिकरि जो पुण्य होइ है ताके फलसौं नीच देव नीच मनुष्यनिके सुखकी प्राप्ति हो है।

चरचा ५९ वीं—मुनिराजकैं चौवीस परिग्रहका निषेध है सो कौनसे हैं?

समाधान–अंतरंग अर वाह्यके भेदसौं परिग्रहके चौवीस भेद हैं। अंतरंगके चौदह १४, वाह्यके दश १०। प्रथम अंतरंग परिग्रहके चौदह भेद कौनसे–मिथ्यात्व १ वेदके राग ३ हास्यादि ६ क्रोधादि ४। एवं १४॥ तथोक्तं सामायिकटीकायां (सामायिक पाठकी टीकामें) गाथा–

मिच्छत्त वेदराया तहेव हास्सादिया य छद्दोसा। चत्तार तह कसाया चउदश अब्भंतरा गंथा॥

तथा च यशस्तिलकनाम्नि काव्ये श्लोकः–

समिथ्यात्वास्त्रयो वेदा हास्यप्रभृतयोऽपि षट्। चत्वारश्च कषायाःस्युस्त्वंतर्ग्रंथाश्चतुर्दश ॥
धर्मामृतसूक्तिसंग्रहेऽपि श्लोकः—
उद्यत्क्रोधादि हास्यादिषट् च वेदत्रयात्मकं। अंतरंगं जयेत्संगं प्रत्यनीकप्रयोगतः ॥
उक्तं चामृतचन्द्रसूरिणा, (अमृतचंद्राचार्यने कहा है) आर्या—
मिथ्यात्ववेदरागास्तथैव हास्यादयश्च षट् दोषाः। चत्वारश्च कषायाश्चतुर्दशाभ्यंतरा ग्रंथाः ॥

इहां एक (और) विशेष समझना। मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृति हैं। दर्शन मोहकी ३ चारित्र मोहकी २५ एही चौदह प्रकारके अंतरंग परिग्रहमें गर्भित हैं। एक मिथ्यात्वमें तीनों दर्शन मोहकी प्रकृति आई। वेदराग तथा हास्यादिमैं नव नोकषाय आई। चार क्रोधादिमैं सोलह कषाय आई इसप्रकार चौदह भेदमें अट्ठाईस प्रकृति आई। यातैं मोहकी प्रकृति अंतरंग परिग्रह रूप जाननी। इस ही अंतरंग परिग्रहकी अपेक्षा ग्यारह बारह गुणस्थानकी निर्ग्रंथ संज्ञा है जातैं तहां मोहनीय कर्मका सर्वथा अभाव है। और वाह्य परिग्रहके दश भेद हैं सो कौनसे? तदुक्तमाचारसारे (आचारसारमें कहा है) श्लोकः—
क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं द्विपदो गोचतुष्पदः। यानं शय्यासनं कुप्यं भांडं चेति वहिर्दश ॥

अर्थ—क्षेत्र कहिये भूमि, वास्तु कहिये घर, धन कहिये सुवर्णादि द्रव्य, धान्य कहिये तंदुलादिक अन्न, द्विपद कहिये दासी दासादिक, चतुःपद कहिये गाय भैंसादिक चौपाये, यानं कहिये रथ पालकी आदि असवारी, शय्यासनं कहिये सोवने बैठनेके उपकरण, कुप्यं कहिये वस्त्रादि, भांडं कहिये भाजन, इति वहिर्दश—ए वाह्य परिग्रहके दश भेद हैं ॥

दोहा—भूम यान धन धान्य ग्रह, भाजन कुप्य अपार ।
शयनासन चौपद दुपद परिग्रह दश परकार ॥ १ ॥

इहां कोई कहै सूत्रजीमें परिग्रहके भेद और भांति कहे हैं सो क्यों ? तिसका उत्तर—कुप्य नाम भेदमें सब गर्भित हैं। सौने रूपे विना सबकौं कुप्य संज्ञा है। सुवर्णरूप्येतरत्कुप्यं इति वचनात् यातैं यहु अर्थ एक ही जानना ॥

चरचा ६०—मुनिराज शास्त्रादि उपकरण राखैं कि नहीं ? समाधान—वसुनंदी सिद्धांत चक्रवर्ती कृत मूलाचार, वीरनंदी-सिद्धांतीकृत आचारसार, चामुंडराय कृत चारित्रसार, शिव-कोटि-मुनीश्वर कृत भगवती आराधना, लघुचारित्रसार, कुंदकुंदाचार्य्य कृत प्रवचनसार तथा रयणसार नियमसार भावपाहुड तथा वीतरागसमयसार, देवसेनकृत भावसंग्रह तथा वामदेव कृत भावसंग्रह, पद्मनंदिपच्चीसी, ज्ञानार्णव, दर्शनसार, क्रियासार, तत्त्वार्थसार, परमात्मप्रकाश, योगसार, सूत्रकी टीका—सर्वार्थसिद्धि, श्रुतसागरी, तत्त्वार्थवृत्ति, सकलकीर्तिकृत धर्मप्रश्नोत्तर-श्रावकाचार ग्यारहसै छ्यासठ प्रश्न संयुक्त है, तत्त्वार्थसार टीका, आत्मानुशासन, आशाधर कृत यत्याचार, आदिपुराण, पद्मपुराण, यशस्तिलककाव्य, चम्पूनामा कर्मकांडकी टीका पंच परमेष्ठिकी टीका, यशोनंदि कृत पूजा पाठ, पद्मनंदिकृत रत्नत्रयपाठ, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, द्वादशानुप्रेक्षा, तथा स्वामिकार्तिकेय कथा, समंतभद्रकथा, भद्रबाहुकथा, श्रेणिकचरित्र अभव्यसेनका प्रसंग, कुंदकुंदाचार्य्यके पंचनाम हेतु कथा, सूत्रके पाठकी फल स्तुति, राजमल्ल-कृत श्रावकाचार ढोलसागर कथा, वृहत् प्रतिक्रमण, समाधितंत्र टीका, वचनकोष, भाषा साधु-

वंदना इत्यादि प्राकृत संस्कृत भाषा रूप अनेक जैन ग्रंथनिविषैं कह्या सो प्रमाण है। इहां कोई पूछे—कुंदकुंदाचार्यने षट्पाहुडविषैं मुनिके तिल तुषमात्र परिग्रहका निषेध किया है, शास्त्रादि उपकरणका ग्रहण क्योंकर संभवै ? तथाहि गाथा—

जह जायरूवसारिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पवहुयं चउत्त पुण जाइ णिग्गोयं ॥

तिसका उत्तर—मुनिराज धन धान्यादि दश जातके परिग्रहविषैं तिलके तुषमात्र राखै तो अनंत संसारी होंय यातैं हाथसौं स्पर्श भी करैं नाहीं यह उपदेश प्रमाण है विशेष इतना शास्त्रादि उपकरण दश जातके परिग्रहमें नाहीं। ज्ञान संयमके साधन हैं। इस अपेक्षासौं समस्त यत्याचार ग्रंथनिविषै शास्त्रादिका ग्रहण मुनिराजके कहा है। शरीरादिक ममत्वसौं जिस वस्तुकौं संग्रह करिये तिसकौं परिग्रह कहिये। शास्त्रादि उपकरण दश प्रकार परिग्रहके भेदविषैं होते तो परिग्रहकी नाईं इनका भी स्पर्शन न करते जैसे ग्रहस्थकी अपेक्षा प्रतिमा पोथी पूजाके उपकरणादि परिग्रहमें नाहीं परिग्रह प्रमाणव्रतकी प्रतिज्ञाविषैं इनका परिमाण नाही करै है तैसैं मुनिकी अपेक्षा शास्त्रादि उपकरण परिग्रहमें नाहीं। जितने दिगंबर आम्नायके ग्रंथ हैं तिनमें यथाजात जिनलिंगके धारी निर्ग्रंथ मुनि कहे हैं। परिग्रहका निषेध सर्वथा सव जगह कीना है। ज्ञानादि साधन वस्तुका निषेध कहीं नहीं कहा। इहां कोई कहै—मुनीश्वरके उपकरण कहांसौं आवै, ग्रहस्थ देइ तो होंइ, सो किस ही ग्रहस्थने उपकरण दान किया नाहीं ? तिसका उत्तर—सर्वार्थसिद्धि नाम दशाध्याय सूत्रकी टीका है तहां श्रावकके अतिथि संविभाग व्रतके व्याख्यानविषैं उपकरण

दान कहा है। तद्यथा—"अतिथये संविभागोऽतिथिसंविभागः। स चतुर्विधः-भिक्षोपकरणौषध-प्रतिश्रयभेदात् ॥ मोक्षार्थमभ्युद्यतायातिथये संयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्या भिक्षा देया धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनाद्युपबृंहकाणि दातव्यानि, औषधमपि योग्यमुपयोजनीयम्। प्रतिश्रयश्च परमश्रद्धया प्रतिपादयितव्य इति ॥ तथा समंतभद्रकृत रत्नकरंडविषैं भी उपकरण दान कहा है। तद्यथा श्लोक—

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन। वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥ ११७ ॥

कुंदकुंदाचार्य्यकृत रयणसारमैं उपकरण दान कहा है। तथाहि गाथा—

हिय मिय अणपाणं णिरवज्जोसह निराउलं ठाणं।
सयणासनमुवयरणं जाणिज्जा देइ मोक्खमग्गाउ ॥

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें कहा है। आर्या—

आहाराभयदाणं विवहोसहट्ठियादिदाणं च। सेसं णाणोयरणं दाउणं भोगभूमि जायत्तो ॥

इहां कोई उपकरण नाम शास्त्रहीका जाने सो नाहीं, यावत् साधन वस्तु हैं तिन सवकूं उपकरण संज्ञा है। ज्ञानके साधनतैं शास्त्रकूं ज्ञानोपकरण कहिये। हरिवंशपुराणविषै भी उपकरण दान कहा है। श्लोकः—

प्रदानं संविभागोऽस्मै यथाशुद्धि यथोदितं। भिक्षौषधोपकरणं प्रतिश्रयविभेदतः ॥

इत्यादि अनेक ग्रंथनिमैं उपकरण दानका निरूपण है।

चर्चा ६१ वीं—तीर्थंकर प्रभूकौं प्रथम आहार देइ सो तद्भव मुक्त होइ ऐसैं सुनी है सो कैसे हैं?

समाधान—जो गृहस्थ तीर्थंकरकौं आहार देइ तिसकौं तद्भव मोक्षका नियम नाहीं तीसरे भवका नियम है। तदुक्तं वृहद्धरिवंशे चतुर्विंशतिदातॄणां मोक्षप्ररूपणे। (बडे हरिवंशपुराणजीमें कहा है) श्लोकः—

तपस्थिताश्च ये केचित् सिद्धास्तेनैव जन्मना। जिनांते सिद्धिरन्येषां तृतीये जन्मनि स्मृता॥

च० ६२ प्र०—शांतिनाथजी कुंथुनाथजी अरहनाथजी इन तीनौं महाराजकौं तीर्थंकर पद कामदेव पद चक्रवर्तिपद क्योंकर हुए?

समाधान—कामदेव पद रूपसौं सर्व मनुष्यनिविषैं मुख्य है सो तीर्थंकर प्रभूके आगे अतिहीन लगै यातैं कामदेव पद तीर्थंकरके क्यों संभवै? तदुक्तं मानतुंगमुनिना (श्रीमानतुंग मुनिने कहा है)—

"यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मापितास्त्रिभुवनैकललामभूत!
तावंत एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥"

और रयधू पंडितने दश लाक्षिणकि स्वयंभूविषैं शांतिनाथजी बारहवें कामदेव कहे हैं। तथा श्लोकः—

१ तस्य टीका—भो त्रिभुवनैकललामभूत! यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिः कृत्वा त्वं भवान् निर्मापितः-उत्पादितः खलु निश्चितं तेऽप्यणवः पृथिव्यां तावंत एव विद्यंते। कुतो हेतोः? यद् यस्मात्कारणात् ते तव समानं सदृशं परं रूपं न ह्यस्ति। शांता उपशम प्राप्ता रागाणां इति रागद्वेषादीनां रुचय इच्छा येषां ते, तैः। त्रिभुवनस्य मध्ये अद्वितीयो ललामभूतो रत्नसमानस्त्रिभुवनैकललामभूतस्तस्यामन्त्रणे। हे समस्त संसारके शिरोमणि भगवान्! जिन शांत परमाणुओंसे आपका शरीर बना है वे उतने हीं संसार में थे इसीलिये आपके समान किसी भी मनुष्यका रूप नहीं मिलता। अर्थात् जिनेंद्रभगवानका रूप अद्वितीय होता है।

यश्चक्रवर्ती भुवि पंचमोभूच्छ्रीनंदनो द्वादशमो गणनाम्।
निधिप्रभुः षोडशमो जिनेन्द्रस्तं शांतिनाथं प्रणमामि नित्यं ॥

इति वचनात्। सो इह कथन मिलता नहीं यातैं त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रंथविषैं नियम कीना है। एक तीर्थंकरके कालविषैं एक कामदेव होय। तथाहि गाथा—

कालेसु जिणवराणं चउवीसाणं हवंति चउवीसा। ते बाहुव्वलिपमुहा कंदप्पा णिरूवमायारा ॥[1]

और महापुराणविषैं तीनौं तीर्थंकर चक्रवर्ती ही कहे हैं। कामदेव न कहे हैं। शांतिपाठमें शांतिनाथजी पांचवे चक्रवर्ती कहे हैं। "पंचममीप्सितचक्रधराणां" इति वचनात्। कामदेव पद इहां भी न कह्या। इसप्रकार इह प्रसंग मूल ग्रंथोंसे मिलता नाहीं। और एक अशग नाम पंडितने श्रीशांतिनाथपुराण कीना है। तहां भी यों लिखा है। तद्यथा श्लोक—

व्यंतरैर्मुदितैरग्रे किरद्भिर्वन्यमंजरीः। वृषभाद्रिं प्रति प्रायाच्चक्री चक्रपुरस्सरं ॥
तीर्थकृच्चक्रवर्ती च कौरवः शांतिरक्षयः। गोत्रेण काश्यपः सूनुरथैराविश्वसेनयोः ॥[2]

चर्चा ६३ वीं—बाहुबलजी भरतकी पृथ्वी जानि अंगुष्ठके बल वर्ष पर्यंत योगारूढ रहे। इसही मान कषायसौं केवल ज्ञानका अवरोध रह्या। ऐसी कहनावत सुनी है। सो क्यूंकर है?

समाधान—भरतकी पृथ्वी जानि बाहुबलिने पग न टेका, अंगुष्ठके बल रहे तो अंगुष्ठ भी

१ चौवीस तीर्थंकरोंके समयमें २४ कामदेव होते हैं जिनका अनुपम सौंदर्य होता है।

२ इरा और विश्वसेनके पुत्र काश्यपगोत्री तीर्थंकर और चक्रवर्ती पदके धारक कौरववंशी शांतिनाथ विजयार्ध पर्वतकी तरफ चलें उस समय फूलोंको आगे २ व्यंतर बखेरते चलते थे।

तो पृथ्वी पै रह्या, यातैं इह कहनावत् अशास्त्रीय है। बाहुबलिजी कायोत्सर्गासनसौं वर्ष पर्यंत निश्चल रहे, आहार विहार न किया। वर्षके अनशनांत दिवस भरतेश्वरजी पूजा करी, तिस-काल केवल ज्ञान उपज्या। प्रथम बाहुबलिजीकैं यह अभिप्राय रह्या, मेरे निमित्तसूं राजा भरत खेद खिन्न हुवा, इस कारणसौं चक्रवर्तीकी पूजा पेखि ज्ञान हुवा। इसप्रकार आदिपुराणमें कह्या है। तथाहि श्लोकः—

वत्सरानशनस्यांते भरतेशेन पूजितः। स भेजे परमज्योतिः केवलाख्यं यदक्षरं।
संक्लिष्टो भरताधीशोऽस्मत्तः इति यत् किल। हृद्यस्य हार्दं तेनासीत् तत्पूजापेक्षिकेवलं॥ १८६॥ पर्व ३६॥

चर्चा ६४ वीं—युगके आदिविषैं प्रथम बाहुबलिजी मुक्त हुये ऐसी सुनी है। सो क्यूं कर है?

समाधान—प्रथम ही अनंतवीर्य नामा राजा मुक्त हुये। तथाहि आदिपुराणमध्ये विंशतितमे पर्वणि (आदिपुराणके २० वें पर्वमें लिखा है)—

संबुद्धोऽनंतवीर्यश्च गुरोः संप्राप्य दीक्षणं। सुरैरवाप्तपूजर्द्धिरग्र्यो मोक्षगतोऽभवत्॥

चर्चा ६५ वीं—तीर्थंकर प्रकृतिके आश्रवकूं दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण कहे हैं। तहां सूत्रजीकी भाषा टीका विषैं यों लिख्या है—सोलह कारण सब मिलैं तब तीर्थंकर प्रकृतिका आश्रव होइ। एक भी घटै तो नं होइ, सो क्योंकर है?

समाधान—चौथे गुणस्थानसौं लेइ आठवें पर्यंत पांचो गुणस्थाननिविषैं तीर्थंकर कर्मका आश्रव हो है। तहां सातवे अप्रमत्त गुण ठाणे तथा आठवें गुणठाणे निरालंब अवस्था है, वंध

वंदक भाव नाहीं, तिसकाल विनयसंपन्नता कारण क्योंकर संभवै? तिसतैं सोलहोंका नियम नाहीं। उपशमादि तीनों सम्यक्त्वनिविषैं सोलह कारणमें एक कारण कोईसा मिलौ तथा दोइ चार मिलौ, अथवा सब मिलौ तौ तीर्थंकर प्रकृति कर्मका आश्रव होइ। "सम्मेव तित्थबंधो' इति कथनात्। यातैं सम्यक्त्व विद्यमान होतैं दर्शन विशुद्धि प्रमुख जुदी जुदी तथा सब तीर्थंकर प्रकृतिकौं कारण हैं। तदुक्तं सर्वार्थसिद्धिटीकायां—"तान्येतानि षोडश कारणानि सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि तीर्थंकरनामकर्मकारणानि प्रत्येतव्यानि।' तथा चोक्तं बृहद्धरिवंशे, आर्या—

तीर्थंकरनामकर्माणि षोडश तत्कारणान्यमूनि। व्यस्तानि समस्तानि भवंति सद्भाव्यमानानि॥

इहां कोऊ पूछै—सम्यग्दर्शनविषैं और दर्शनविशुद्धिविषैं क्या विशेष है? तिसका उत्तर—सम्यक्त्वके तीन भेद हैं। उपशम, वेदक, क्षायिक। ये तीनों सम्यक्त्व तीर्थंकर कर्मकौं कारण नाहीं। इनविषैं उत्कृष्ट निर्मलताकी दर्शनविशुद्धि संज्ञा है। सो तीर्थकर कर्मकूं कारण है। इह विशुद्धता केवली श्रुतकेवलीके निकट विना होय नाहीं। केवल एक इसहीसौं तीर्थंकर कर्मका आश्रव हो है। अर जो यह न होय तो तीनो सम्यक्त्ववाले केवली श्रुतकेवली समीप वाकी पंद्रह कारणसौं तीर्थंकर कर्मका बंध करैं। इहां कोऊ पूछै—क्षायिक सम्यक्त्व तौ अति निर्मल है। इसमें और विशुद्धता क्या होइ? तिसका उत्तर—क्षायिक सम्यक्त्व तौ चौथे गुणठाणे भी है। तहां दर्शनमोह संबंधी मल नाहीं यातैं निर्मल है। चारित्रमोहके उदय यथायोग्य शंकादिमल युक्त होय है। क्षायिकी श्रीश्रेणिकने अपघात किया। इत्यादि कारणसौं क्षायिक सम्यक्त्व

में अर दर्शनविशुद्धिमें भेद है। जैसें दर्शनविशुद्धि एक ही तीर्थंकर कर्मकौं कारण है तैसें क्षायिक सम्यक्त्व अकेला तीर्थंकर प्रकृतिकौं कारण नाहीं। अर ऐसें न होइ तौ क्षायिक सम्यक्त्व विना तो कोऊ मुक्त होता नाहीं, सव ही तीर्थंकर होयकैं मोक्ष जांय। यातैं क्षायिक सम्यक्त्वमें अर दर्शन विशुद्धिमें प्रकट भेद है। एक पंडितने यों कहा है—सोलह कारण विषैं मुख्य कारण सम्यक्त्व गुण है सो चाहिये। अर पंद्रह कारणमेका कोइसा कारण चाहिये तो तीर्थकर कर्मका बंध होय। इस भांति लिखनेसूं यह जान्या गया—सम्यक्त्व अर दर्शन विशुद्धिमें भेद न गिन्या, परन्तु भेद है। तीर्थंकर कर्मकौं सम्यक्त्व कारण नाहीं। तीर्थंकर प्रकृतिका स्वामी है। अर आहारादिकका स्वामी है यातैं सम्यक्त्व विना इन तीनों प्रकृतिका बंध नाहीं। कारण पूर्वोक्त है। इह एकाग्रमनसूं विचारिये। अब इस चर्चाका सिद्धांत लिखिये है—

प्रथम तीनों सम्यक्त्वमें कोई एक सम्यक्त्व होइ, तब तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होइ, तहां भी तब बंध होइ जब केवली श्रुतकेवलीका सामीप्य होय। केवली श्रुतकेवलीके समीप भी तब बंध होय जब सोलह कारण विषैं कोई कारण मिलै। सोलह कारण विषैं भी तब बंध होय जब उस कारण के उत्कृष्ट भाव होंहि।

चरचा ६६ वीं—तीर्थंकरकी माता रजस्वला होइ कि नाहीं?

समाधान—आदिपुराणके गर्भावतार पर्व विषैं तीर्थंकरकी माताकैं रजका निषेध कीना है तथाहि श्लोकः—

सम्मता नाभिराजस्य पुष्पवत्यरजस्वला। तदा वसुंधरा भेजे जिनमातुरनुक्रियां॥

अर्थ—वसुंधरा तदा जिनमातुरनुक्रियां भेजे—तदा कहिये तिस काल वसुंधरा कहिये पृथ्वी जु है सो जिनमातुः अनुक्रियां भेजे—जिन माताकी समानतासी धरै। भावार्थ—स्वर्गावतार से छह महीने पहिले देवता पंचाश्चर्य करै हैं तिस काल पृथ्वी तीर्थंकरकी मातासौं स्पर्धा करै है। कैसी है पृथ्वी ? पुष्पवती कहिये देवकृत पुष्पवृष्टिसौं पुष्पवती है तथा माता गर्भाधान जोग्य है और कैसी है ? अरजस्वला देवकृत गन्धोदककी वर्षासौं रजरहित है । माता पछे स्त्रीधर्मसूं रहित है। और कैसी है ? नाभिराजसम्मता कहिये नाभिराजकौं अभीष्ट है। दोनों पक्ष नाभिराजकौं अभीष्ट हैं। इस उत्प्रेक्षासौं तीर्थंकरकी माता अरस्वजला जाननी।

चर्चा ६७ वीं—तीर्थंकर प्रभुकी मुनिराजसौं भेंट होइ कि नाहीं ?

समाधान—एक दिन श्रीकुंथुनाथ चक्रवर्ती वन विहार कर अपने नगरकौं आवैं थे। मार्ग विषैं आतापन योगी साधु तर्जनी अंगुलीसूं मंत्रीकौं बताया। मंत्री मुनिकूं नमस्कार किया। तीर्थंकरकौं पूछी—हे देव ! ऐसे दुर्धर तपकौं करके साधू कैसे फलकौं प्राप्त हो है ? प्रसन्नमुख भगवान बोले—कर्म नाश करेंगे तो इस ही भव मुक्त होइंगे। कर्म नाश न होंइगे तो इंद्रादिक पद पाइकैं कर्मसूं मुक्त होइंगे। परिग्रहवान संसारमें परिभ्रमण करेंगे । इस भांति परमार्थके जाननहारे परमेश्वर बंध मोक्षका स्वरूप कहते हुवे । यह प्रसंग महापुराणविषैं जानना । तथा विजय संजय नाम दोय चारण मुनिकौं किस ही अर्थ विषैं संदेह उपज्या। जन्मके अनंतर श्रीवर्धमान स्वामीका दर्शनकर निःसंदेह हुवे तब महाभक्तिसौं प्रभुकी सन्मति संज्ञा करी, स्वस्थान गए। यह भी प्रसंग महापुराणविषैं है। इस भांति तीर्थंकरकौं मुनिराजकी भेट भई।

चरचा ६८ वीं—तीर्थंकरकी माताकौं गर्भावतार अवसर छप्पनकुमारी देवांगना सेवे हैं। ते कौनसी?

समाधान—कल्पवासीनिकी इंद्राणी १२ भवनवासिनकी इंद्राणी २०, व्यंतरेंद्रकी इंद्राणी १६ चंद्रमाकी १, सूर्यकी १, कुलाचलवासिनी श्री आदि ६, एवं छप्पन ५६। इहां कोऊ कहे—श्री आदि कुलाचलवासिनी माताकौं सेवने आवैं इह तो सुनी है। अर छप्पनकुमारी सेवा करैं है तिनका नाम तथा स्थानकका सेवामें प्रसंग प्रसिद्ध नाहीं। यह क्योंकर जाना गया? समाधान--इनका नाम तो एक जायगा लिख्या है। अर छह कुलाचलवासिनी गर्भ सोधना करैं, वाकी इंद्राणी माताकी प्रछन्न सेवाकरैं प्रगट नाहीं। उनका ऐसा ही नियोग है। यह कथन श्री आदिपुराणविषैं आया है।

चर्चा ६९ वीं—बहुबलिजीकी प्रतिमा पूज्य है कि नाहीं?

समाधान—जिनलिंग सर्वत्र पूज्य है। धातमें, पाषाणमें काष्ठमें जहां है तहां पूज्य है। याहीतैं पांचों परमेष्ठीकी प्रतिमा पूज्य है। इहां कोऊ पूछैं—तीर्थंकर प्रभूकी प्रतिमा पूज्य है यहु सुनी है। पांचों परमेष्ठीकी प्रतिमा पूज्य कहां कही है? तिसका उत्तर—गोम्मटसारजीमें कहा है पांचों परमेष्ठीकी प्रतिमा पूज्य है। जीवकांडके मंगलाचरण प्रस्तावविषैं देखलीज्यो। तथाहि "तत्र नाम मंगलं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां नाम, स्थापनामंगलं कृत्रिमाकृत्रिमजिनादीनां प्रतिविंबं।" इति कथनात्। तथा चोक्तं चैत्यभक्तिनिरूपणे यशस्तिलके—

१. अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु इनकी कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिमा स्थापना मगल है।

भौमव्यंतरमर्त्यभास्करसुरश्रेणीविमानाश्रिता:
स्वर्जातीकुलपर्वतांतरधरारंध्र:प्रबंधस्थिता: ।
वंदे तत्पुरपालमौलविलसद्रत्नप्रदीपार्चिता:
साम्राज्याय जिनेन्द्रसिद्धगुणभृत्स्वाध्यायसाध्वाकृती: ॥

धरणेंद्रकी आज्ञासौं संजयत मुनिकी प्रतिमा विद्याधरोंन स्थापी । मृगध्वज नाम केवलीकी प्रतिमा कामदेव सेठने स्थापन करी । ए दोन्यों प्रसंग बडे हरिवंशपुराणजीमें हैं । अर करणाटकदेशमें अठारह धनुष प्रमाण बहुबलिजीकी प्रतिमा विद्यमान है । तिसहीकों गोम्मटस्वामी कहे हैं । निर्वाणकांडमें भी गोम्मटस्वामीकी प्रतिमा पूज्य कही है । तथाहि, गाथा—

गोम्मटदेवं वंदामि धनुसपंचसयदेहउच्चत्तं ।
देवा कुणंति विट्ठी केसरकुसुमाण तस्स उवरम्मि ।

यह प्रतिमा किसी ही द्वीपांतरविषैं जाननी ।

चर्चा ७० वीं—पार्श्वनाथजीके तपकालविषैं धरणेंद्र पद्मावती आये मस्तकके ऊपर फणका मंडप किया । केवलज्ञान समय रह्या नाहीं । अब प्रतिमाविषैं देखिये है । सो क्योंकर संभवै ?

समाधान—जो परंपरासौं रीति चली आवै सो अयोग्य कैसे कही जाय ? और भी अेसे कारण हैं समवशरणमें विद्यमान नाहीं, प्रतिमाविषैं देखिये है । जैसै स्नान क्रिया केवलज्ञानकी

१ भवनवासी, व्यतरलोक, मध्यलोक, सूर्य चद्रमा देवताओंके श्रेणी विमान, कुलाचल और नगर शासकके मुकुटमें आदि जहां जहां पांचों परमेष्ठियोंके प्रतिविंब है उनको नमस्कार करता हू ।

पूजाविषैं नाहीं, प्रतिमाविषै, उचित है। अर बनारसीदासजीने भी श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुतिविषैं सातफणी लिखे हैं। "सजल ज़लदतन मुकुट सपत फन' इति कथनात्। तथा माघनंदी मुनिकी करी बंदे तानकी जयमालमैं लिख्या है। तथाहि—फणमणिमंडपमंडितदेहं पार्श्वजिनं जगद्भूतसंदेहं इति वचनात् । कथाकोशमैं इसका उदाहरण है—पात्रकेशरी नाम ब्राह्मणकैं अनुमानके लक्षणमैं संदेह हुवा। तब पद्मावतीदेवी पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके फणपर अनुमानके लक्षणका श्लोक लिखगई। दर्शन करते ही ब्राह्मणका संदेह गया। इत्यादि और भी उदाहरण हैं। तिसतैं प्रतिमाजीके मस्तक पर फण देख अरुचि न करनी।

चर्चा ७१वीं—श्रीपार्श्वनाथजीके मस्तकपर सात फण हैं तिसका हेतु तौ जानिए है। अर श्रीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा पर नौ फण हैं तिसका क्या हेतु है?

समाधान—सातफण, नौफण, ग्यारहफणवाली यावंत प्रतिमा है। तितनी सब पार्श्वनाथजीकी जानना। परीक्षा करिलेनी।

चर्चा ७२वीं—चौवीस तीर्थंकरकी प्रतिमाके आसनविषैं वृषभादिक चिन्ह हैं सो क्या है?

समाधान—तीर्थंकरके दाहिने पांवमें जो चिन्ह जन्मसों होइ, सोई प्रतिमाके आसनविषै जानना। तदुक्तं गाथा—

जम्मणकाले जस्स दु दाहिण पायम्मि होइ जो चिह्नं। तं लक्खण पाउत्तं आगमसुत्तेसु जिणदेहं॥

चर्चा ७३वीं—ऊपर लिखा प्रतिमाके पूजनविषैं न्हवनक्रिया उचित है सो इह तौ जन्म समयकी विधि है। प्रतिमाविषैं केवलज्ञानकी विधि चाहिजे।

समाधान—केवलज्ञानकी साक्षात्पूजाविषैं न्हौंन नाहीं, प्रतिमाकी पूजा न्हवनपूर्वकही कही है। जैसैं समवशरणमें पार्श्वनाथजीके मस्तकपर फण होय नाहीं, प्रतिमाविषे विद्यमान है। इस पूर्वोक्त दृष्टांतसौं प्रतिमाकी पूजाविषै न्हवनविधि जोग्य है। अर जहां पूजाकी विधिका निरूपण है तहां प्रथम न्हवन ही कह्या है। तदुक्तं यशस्तिलकनाम्नि काव्ये (सोही यशस्तिलकचम्पू काव्यमें कहा है)—

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं जपो ध्यानं श्रुतस्तवः। षोढा क्रियोदिता सद्भिः देवसेवासु गेहिनां॥

इत्यादि कथनतैं जानिए है—न्हवनका बडा पुण्य है। इहां कोई कहै—बडा पुण्य तौ अष्टप्रकार पूजाकाही है। जलादिक आरंभसौं न्हौनविषैं कौंनसा विशेष पुण्य है हम तो धातु पाषाणमयी कृत्रिम प्रतिमाका प्रक्षाल उज्ज्वलताके निमित्त करै हैं। तिसका उत्तर——कृत्रिम प्रतिमाका प्रक्षाल तौ उज्ज्वलताके निमित्त है। अकृत्रिम प्रतिमा रत्नमयीका प्रक्षाल देव विद्याधर क्यों करै हैं? तब फिरि बोलै—देव विद्याधर अकृत्रिम प्रतिमाका प्रक्षाल करैं यह क्योंकर जान्या जाइ? तिसका उत्तर—मानस्तंभसंबंधी सुवर्णमयी प्रतिमाका अभिषेक इंद्रादिक देव करै हैं। तदुक्तं आदिपुराणे (आदिपुराणजी में कहा है)

हिरण्मयीं जिनेंद्रार्चां तेषु बुधप्रतिष्ठितां। देवेंद्राः पूजयंति स्म क्षीरोदाम्भोधिसेचनैः॥

अर स्वर्गविषैं जो शास्वती प्रतिमाका अभिषेक देवता करै हैं तिसकी साख नेमिचंद्रकृत त्रिलोकसारमें हैं।

सुहसयणग्गो देवा जायंते दिणयरो व्व पुव्वणगे।

१ जिसप्रकार पूर्वाचलपर सूर्यका उदय होता है उसीप्रकार देव उपपाद शय्यापर पैदा होते हैं। अंतर्मुहूर्त मात्र समयमें इन-

अंतोमुहुत्तपुण्णा सुगंधिसुचिफाससुचिदेहा ॥ ५५० ॥
आणंदतूरजयथुदिरवेण जम्मं विबुज्झ सं पत्तं ।
दट्ठूण सपरिवारं गयजम्मं ओहिणा णव्वा ॥ ५५१ ॥
घम्मं पसासिदूण ण्हादूण दहे भिसेयलंकारं ।
लद्धा जिणाभिसेयं पूजं कव्वंति सद्दिट्ठी ॥ ५५२ ॥

इह कथन गोम्मटसारके उत्तरार्धविषैं सिद्धांतोक्त कह्या है। यातैं न्होनकी क्रिया मैं दोष मानना नाहीं। तथा श्रीयोगेंद्रदेवकृत श्रावकाचारविषैं भी न्होन कह्या है।

तोटक छंद—आरंभे जिणए दाविजये जो सावज्ज भणंति। (?)
दंसण तेण जिमइ लियउइच्छुण काइ ओ भंति। पुण्णरासी एह बणाई यहं पाउलहउ कितने। (?)

चर्चा ७४ वीं—प्रतिमाजीविषैं पूज्य अपूज्यका विवरण क्योंकर है ?

समाधान—जो विंब शिल्प शास्त्रोक्त समचतुरस्र संस्थानादि लक्षण युक्त होइ अंगोपांग-करि युक्त होइ, प्रतिष्ठित होइ सो पूज्य है। तदुक्तं प्रतिष्ठापाठे (सो ही प्रतिष्ठापाठमें कहा है)

यद्बिंबं लक्षणैर्युक्तं शिल्पशास्त्रनिवेदितं ।
सांगोपांगं यथायुक्तं पूजनीयं प्रतिष्ठितं ॥

का शरीर सुगंधि पवित्र स्पर्शवाला पूर्ण हो तैयार होजाता है आनंदके शब्द वाजे आदि सुनकर ये अपना जन्म समझते हैं और अवधिज्ञान द्वारा पहिले भवकी बातें जानकर धर्मकी प्रशंसा करते हैं और सम्यग्दृष्टि ये ह्रदमें स्नानकर अलंकार आदिसे सुशोभित हो जिनेंद्र भगवानका अभिषेक व पूजन करते है।

नासामुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमंडले।
स्थानेषु च गतांगेषु प्रतिमा नैव पूजयेत्।

इहां कोई पूछे— समचतुरस्रसंस्थानका क्या स्वरूप है ? तिसका व्योरा—अंगुष्ठसौं लेइ मध्य अंगुली ताईके प्रमाणकी ताल संज्ञा है। सो अपने अंगुलसौं बारह अंगुल मात्र हो है। जो प्रतिमाजीका ताल होइ तिसतैं दशगुणी उच्चता होइ, घाट बाढ न होइ तिसे समचतुरस्र संस्थान कहिए। तिसतैं जैनकी प्रतिमा दश ताल चाहिये और देवताकी प्रतिमा नवताल चाहिये। तदुक्तं शिल्पशास्त्रे (शिल्पशास्त्रमें कहा है)

भवबीजांकुरमथना अष्टमहाप्रातिहार्यविभवसम्मेताः।[1]
ते देवा दशतालाः शेषा देवा भवंति नवतालाः॥

यह समचतुरस्रसंस्थानका स्वरूप तथा तालका प्रमाण अभयनंदिसिद्धांतचक्रवर्तिकृत कर्म प्रकृति नाम गद्य ग्रंथ है तहां जानना। ऐसे पूर्वोक्त लक्षण समेत प्रतिमा पूज्य है। अर जो प्रतिमा अतिशयवान होइ तो जीर्ण भी पूज्य है। अंगहीन भी पूज्य कही है। शिरोहीन होइ तो पूज्य नाहीं। ऐसैं प्रतिष्ठापाठ शास्त्रमें कहा है। तथाहि श्लोक—

जीर्णं चातिशयोपतं तद्विंबमपि पूजयेत्। शिरोहीनं न पूज्यं स्याद् निक्षिपेत्तन्नदादिषु॥[2]

चर्चा७४वीं—प्रतिमाजीविषैं कानका आकार कांधेसौं लगा होइ है सो क्या है ?

---

१ संसारके जन्म मरणरूपी दुःखोंको नष्ट करनेवाले, आठ महाप्रातिहार्योंसे सुशोभित देव दश तालके होने चाहिये और बाकी के नव ताल प्रमाण होते है। २ जिस प्रतिमाजीका मस्तक खंडित होगया है उसे नदी आदिमें प्रक्षेपण करदे।

समाधान—पाषाणके प्रतिमाजीके कानका रक्षाका उपाय है। सोई धातुकी प्रतिमाविषैं रूढि चल पडी हे। और कारण कोई नाहीं।

चर्चा ७५ वीं—शास्वती प्रतिमा हैं तिनका क्या स्वरूप है?

समाधान—गाथा-सिंहासणादिसाहिया विणीलकुंतल सुवज्जमयदंता।

विद्दुमअहरा किसलयसोहायरहत्थपायतला ॥ १८५ ॥

दशतालमाणलक्खणभरिया पेक्खंत इव वदंता वा।

पुरुजिणतुंगा पडिमा रयणमया अट्ठअहियसया ॥ १८६ ॥

यह अकृत्रिम जिन प्रतिमाका वर्णन नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ती कृत त्रिलोकसारविषैं है।

चर्चा ७६ वीं—गृहस्थ अपने घरमें प्रतिमा पूजनकरै कि नाहीं?

समाधान—सबसौं उच्च उत्तम एकांत जगह होइ तहां ग्यारह अंगुल प्रमाण प्रतिमा पूजै। एक शास्त्रविषैं बारह अंगुल प्रमाण भी कहा है। बढती विंब होइ तौ देहुरे थापै। अन्यथा आज्ञा भंग होइ। तदुक्तं प्रतिष्ठाशास्त्रे (सोई प्रतिष्ठा शास्त्रमें कहा है)

आरभ्यैकांगुलं विंबं यावदेकादशांगुलं। गृहेषु पूजयेत्प्राज्ञ ऊर्ध्वं प्रासादके पुनः ॥

चर्चा ७७ वीं—देवपूजन योग्य पुरुष कैसा चाहिये?

१। अकृत्रिम जिन प्रतिमाएं सिंहासन आदि समस्त प्रातिहार्योंसे सहित हैं। नीलकेशवाली हैं। विद्रुमके ओष्ठों से सुशोभित है। किसलय (कोपल) के समान हाथ और पैरों से युक्त है। दश ताल प्रमाण ऊची आदि प्रतिमा के समस्त लक्षणोंसे संयुक्त हैं। देखती हुई वा बोलती हुई सरीखी जान पडती है, रत्नमयी हैं और पांच सौ धनुष ऊंची है।

समाधान—शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो दृढव्रती सत्यदयासमेतः।
दक्षः पटुर्बीजपदावधारी जिनेंद्रपूजासु स एव प्रशस्तः ॥ १ ॥
तथा पुनः—नाकुलीनो न दुर्दृष्टिर्न पापी नाप्यपंडितः। न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नांतकः परदूषितः।
नाधिकांगो न हीनांगो नातिदीर्घो न वामनः। न विरूपो न मूढात्मा नातिवृद्धो न बालकः ॥३॥
न मायावी न मोही वा न चेष्टी वाऽदृढव्रतः। नार्थार्थी न च पाखंडी न रोगी न च विनीतकः ॥४॥
न साहसिकवेशाशीर्नाशस्त्रज्ञो न लोभवान्। नातिक्रोधो न दुष्टात्मा नाभक्तो न विकल्पकः ॥

इत्यादि जिनपूजकके लक्षण जिन संहिताविषै कहे हैं। इहां कोई आशंका करै—देवपूजनविषैं वामनपुरुष दोषीक होय है यातैं मनै कीया। दीर्घ मनै क्यों किया? तिसका उत्तर—अतिदीर्घ मनुष्य अवश्य मूर्ख होय यातैं मनै कीया।

चर्चा ७८वीं—पूजाके समय पूजक पुरुष कौनसी दिशा रहै?

समाधान—प्रतिमा पूर्वमुख होय तो आप उत्तरमुख रहै। उत्तरमुख प्रतिमा होइ तो आप पूर्वमुख रहै। उक्तं च यशस्तिलकनाम्नि काव्ये (यशस्तिलकचंपूमें कहा है)—

उदङ्मुखं स्वयं तिष्ठेत् प्राङ्मुखं स्थापयेज्जिनं। पूजाक्षणं भवेन्नित्यं यमी वाचंयमाक्रियः ॥

१। पवित्र, प्रसन्न, चित्त, गुरु और देवका भक्त, दृढता पूर्वक व्रत पालने वाला, सत्यभाषी दयावान्, चतुर और बीजाक्षरों का अर्थ जानने वाला पुरुष जिनेंद्र की पूजा करनेवालों में सबसे श्रेष्ठ है। और जो उच्चकुलका नहीं है, जिसकी दृष्टि खराब है, पापी हैं, मूर्ख है, हीनाचरणी है, जिसके अधिक या हीन अंग है, जो अधिक ऊचा वा गट्टा है, कुरूप है, अति बुड्ढा है, बालक है, मायाचारी मोही, प्रतिज्ञाभंग केरन वाला, कुचेष्टी है, धनका लोभी, पाखंडी, रोगी, उद्दंड, लुटेरा, शास्त्रोंको नहीं जानने वाला है, अतिक्रोधी दुष्टात्मा और नाना तरहके विकल्प उपजावने वाला भक्त नहीं है वह पूजा करनेके अयोग्य है।

अन्यत्राप्युक्तं (दूसरी जगह भी कहा है)—

स्नानं पूर्वमुखीभूय प्रतीच्यां दंतधावनं। उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि पूजां पूर्वोत्तराङ्मुखी॥[1]

इहां कोऊ पूछै—देवपूजाके अनंतर शास्त्रकी पूजा कीजे, कै गुरुकी पूजा कीजे? तिसका उत्तर—प्रथम देवपूजा, तिसके अनंतर सरस्वतीकी पूजा, तिसके अनंतर गुरुकी पूजा। तिस पीछै और नैमित्तिक पूजा कीजे। तदुक्तं (सोही कहा है)—

"जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं।" तथा 'ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां, इत्यादि। जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः, इत्यादि। श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः, इत्यादि। गुरौ भक्तिः, इत्यादि
ओंकारं[2] विंदुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः। कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥
अविरल[3]शब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका। मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्
अज्ञान[4]तिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
देवण्हं सत्थण्हं मुनिवरण्हं भत्तिए पणावेइ, इत्यादि अनेक जायगे एही क्रम है। अर मुनिराज भी शास्त्रकी विनय भक्ति करै हैं यातैं देव पूजनके पीछे श्रुत भक्ति जोग्य है। उक्तं च यशस्तिलके (यशस्तिलक में कहा है)।

---

१ पूर्व दिशामें मुह करके स्नान, पश्चिममें दांतोन उत्तरमें सफेद वस्त्र धारण और पूर्व वा उत्तरादिशामें मुखकर पूजन करे।

२ ओम्‌की योगी लोग उपासना करते हैं। ओम् समस्त अभीष्टों तथा मोक्षको देनेवाला है इसलिये उसे नमस्कार है।

३ जिसने शब्दरूपी अविरल मेघधाराओंसे संसारके समस्त पापरूपी मैलको धोदिया है मुनिगण जिसकी सेवा करते हैं ऐसी सरस्वती देवी हमारे पापोंको दूर करें।

४ अज्ञानरूपी अंधकारसे अंधे हुये हमलोगोंके नेत्र जिनने ज्ञानरूपी अंजनकी सलाई डालकर खोलदिये उन गुरु देवको नमस्कार है।

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं जपो ध्यानं श्रुतस्तवः। षोढा क्रियोदिता सद्भिः देवसेवासु गेहिनां ॥

चर्चा ७९ वीं—भगवानका गंधोदक लेना जोग्य है कि नाहीं ?

समाधान—भगवानका अभिषेक जल इंद्रादिक करि पूज्य है। अत्यंत विनयभक्तिसूं लेना जोग्य है। तदुक्तं (जैसा कि कहा है)—

निर्मलं निर्मलीकरं पावनं पापनाशनं। जिनगंधोदकं वंदे कर्माष्टकविनाशकं ॥

अन्यत्राप्युक्तं [और जगह भी कहा है]—

नाडीं पश्यति हस्तमामयपरीक्षार्थं गृहीत्वा भिषक्
पृष्ट्वा राजविनीततः कुचयुगं पृष्टं किमित्यहो ॥
देवस्यार्चनसारसंनिचयात् गंधाबुपुष्पत्रयं
ग्राह्यं शेषमशेषवस्त्वनुचितं ग्राह्यं तिरत्न त्रयं ॥(?)

गंधोदकके प्रभावसौं राजा श्रीपालकी कुष्ठ व्याधि गई। अयोग्य होता तो मोक्षगामी जीव क्यूं लगावते। और महापुराणमें गर्भाधान प्रमुख एकसौ आठ क्रिया कही हैं तिनमें एक बालकके मस्तकपैसे केश उतारनेकी केशयापन दूसरा नाम चौल क्रिया है। सो गुरुपूजा पूर्वक होइ है तहां बालकके मस्तकपै शेषाक्षत धारिकै गंधोदकसूं केश आले करि चोटी राखि मूडन कीजे है फेरि गंधोदक सूं नहवाइए। आगैं और विधि है ऐसैं गंधोदकका ग्रहण घनी जागा है। अजोग्य होता तो महापुराणविषैं काहेकूं कहते।

१ निर्मल करनेवाला मल रहित पवित्र पापोंका नाशक जिन भगवानका गंधोदक आठो कर्मोंका नाश करनेवाला है उसे मैं नमस्कार करता हूं।

चर्चा ८० वीं—ऊपरि शेषाक्षत कहे सो कहा कहावै ?

समाधान—पूजा करते अक्षत तथा पुष्प बिना चढे बाकी रहैं तिनकी शेषाक्षत संज्ञा है तथा आशिकाकौं पवित्र मान माथै धरवो जोग्य है । उक्तं च महापुराणे सज्जातिक्रियायां—(सज्जातिक्रियाके प्रकरणमें कहा है)—

लंभयंत्युचितां शेषां जैनीं पुष्पैस्तथाक्षतैः ।
स्थिरीकरणमेतद्धि धर्मप्रोत्साहनं परं ॥ १७ पर्व ३९ ॥

चर्चा ८१ वीं—प्रतिमाजीके अभिषेक समय दर्शन करना जोग्य है कि नाहीं ?

समाधान—ऐसा देश काल कोई नाहीं, जहां तीर्थंकर प्रभुकूं प्रणाम न कीजे । तीर्थंकर प्रभुके नाम स्थापना द्रव्य भावसौं च्यारों निक्षेप पूज्य हैं । तहां द्रव्य करि श्रेणिक राजा नरक में है, तथा पद्म तीर्थंकर प्रथम होनहार है तीन चौवीसीकौं स्तुतिविषैं नमस्कार कीजै है यातैं तीर्थंकर सदा काल पूज्य हैं ।

चर्चा ८२ वीं—स्त्रीकौं पूजा करनेका आधिकार है कि नाहीं ?

समाधान—किसही कथा पुराणमें स्त्रीकौं पूजाका निषेध आया नाहीं पूजा करनेका प्रसंग तो केई जायगा आया है । प्रथम बाराणसीविषैं राजा अकंपनकी सुलोचना नाम पुत्री तीनै अष्टान्हिका पूजा करी । पिताकौं आइ आशिका दीनी । राजाने अंजुलिकरि माथै धरी । इह कथा महापुराणमें है । तथाहि श्लोकः—

विधायाष्टाह्निकीं पूजामभ्यर्च्यार्चा यथाविधि । कृतोपवासा तन्वंगी शेषान् दातुमुपागता ॥

नृपं सिंहासनासीनं सोऽभ्युत्थाय कृतांजलिः । तद्दत्तशेषानादाय निधाय शिरसि स्वयं ॥
उपवासपरिश्रांता पुत्रिके त्वं प्रयाहि ते । शरण्यं पारणाकाल इति कन्यां विसर्जयत् ॥१७९प.४३

और भी मैना सुंदरीने पूजा करी, श्रीपाल गंधोदक लगाया इह कथा प्रसिद्ध है। तथा अंजना देवीके भवांतरविषैं विजयार्धपै अरण्य नामा नगर तथा श्रीकंठ राजा राज्य करै तिसकी पट्टरानी कनकोदरी दूसरी रानी लक्ष्मीमती, सो परम धर्मात्मा मंदिरविषैं प्रतिमाकौं स्थापन कर विनय भक्तिसौं पूजा करै। एक दिन कनकोदरी अपने पट्टरानी पदके अभिमानतैं अर सपत्नी भावसौं लक्ष्मीमती रानीकी प्रतिमा मंदिरसौं वाहिर निकास धरी। संयमश्री आर्जिकाके लिये उपदेशसौं प्रतिमा यथास्थान स्थापी। महा आनन्दसौं आप पूजा करी यथाशक्ति तप कर समाधिमरण करि स्वर्ग पहुंची। तहांसों आय राजा महेंद्रके अंजना नाम पुत्री होती भई। कनकोदरीके भवमें केतेक काल प्रतिमाकी अवज्ञा कीनी थी। तिसही कारणसौं इस जन्मविषैं पतिसो विछोह हुवा। इह प्रसंग बडे पद्मपुराणजीविषैं जानना। इहां कोऊ कहे—स्त्री पूजा करे, यह तो सुनी है। पर अभिषेक न करै। तिसका उत्तर—पूजा तो अभिषेक विना होती नाहीं इह नियम है ऊपरि मैनासुंदरी अभिषेक न कीना, तो गंधोदक कहां सो लाई। तथा स्त्रीके स्पर्शका कुछ ऐसा द्वेष होता तो स्त्रीका किया तथा स्त्रीके हाथसौं आहार साधु काहेको लेते। तिसतैं उत्तम पतिव्रता गुणवती स्त्रीनिकौं पूजाका निषेध नाहीं।

---

१ सुलोचना विधिपूर्वक अष्टाह्निकाके दिनोंमें अर्हंत भगवानकी पूजा करके अपने पिताके पास आशिका देने आई। महाराज अकंपनने आशिका अपने माथे चढाई और 'उपवास करने से तेरा शरीर श्रांत हो रहा है पारणाका समय हो चुका है।' कह कर पुत्रीको घर भेज दिया।

चर्चा ८३ वीं—निर्माल्य किसे कहिये ?

समाधान—देवकौं मंत्रपूर्वक जिस वस्तुका समर्पण कीजै तिसे निर्माल्य कहिये। देव चढा निर्माल इह कहनावतमें भी कहै हैं। इहां कोई तर्क करै—हम तौ यौं जानै हैं, देव आगे धरा सो निर्माल्य हुवा चढाबने ताईं क्या है? उत्तर—जो देवके आगै धरा निर्माल्य हुवा तो प्रथम पूजन सामग्री देवके आगै धारिए हैं पीछे मंत्र पढिके चढाइए है। अैसैं तो निर्माल्यका चढावना हुआ, बडा दोष उपजै। इस हेतुसूं जैसैं आप कहो तैसे क्यूं करि संभवै है? यातैं देवकूं चढै सो निर्माल्य है आगै धरा निर्माल्य नाहीं। इहां कोई पूछै—देव चढा सो निर्माल्य हुवा उसे फेरि क्या करै? तिसका उत्तर जो वस्तु देवकूं चढाई तिस वस्तुसूं चढानेवालेकूं कुछ भी प्रयोजन रह्या नाहीं। जैसे किसही पर वस्तुविषै ममत्व नाहीं तैसैं देव चढा वस्तुसूं कछु ममत्व नाहीं। अथवा जैसैं फलका अर्थी काछी किसान उत्तम खेतविषै वीजि वोवै है फेरि उसका वीजसौं कछु प्रयोजन नाहीं, फलसौं प्रयोजन है। तैसैं उस देवचढी वस्तुसौं प्रयोजन नाहीं, जो इसे किसहीकूं देवै तो ममत्व आया राखै तो ममत्व आया और इसका उपाय किसी जैन ग्रंथ विषैं प्रगट जाना गया नाहीं। बडे पद्मपुराण विषैं एक प्रसंग है वहां रामजीकी आज्ञासौं कृतांतमुख सेनापति सीताजी को वन छेडवा गया है। तहां दुःखी होइ अपने दासपनेकी निंदा करै है तिस जगै दृष्टांतकरि संस्कार कूट आया है सो इसहीसौं श्वेतांबर आम्नाय विषै निर्माल्य कूट कहै हैं। यथा श्लोकः—

संस्कारकूटकस्येव पश्चान्निर्वृत्ततेजसः। निर्माल्यवाहिनो धिग् धिग् भृत्यनाम्नोऽसुधारणं ॥

अर्थ—भृत्यनाम्नः असुधारणं धिक् धिक् भृत्यनाम्नः कहिये दास है नाम जाका तिसकौं

आयुधारण कहिये प्राणधारण ताहि धिग् धिग् कहिये धिकार है धिकार है। कौनकी नाई ? संस्कारकूटकस्य इव—संस्कार कूटकी नाई। भावार्थ—चैत्यालयसंबंधी निर्माल्य धरनेका स्तंभ होय है तिसकी संस्कारकूट संज्ञा है, तिसकी नाईं दासका जीवन है तिसे धिकार होओ। कैसा है दास ? पश्चात् निर्वृत्ततेजसः पश्चात् कहिये पीछे निर्वृत्ततेजसः कहिये प्राप्त है तेज जिसकौं। भावार्थ—स्वामीके आगें दासका तेज होता नाहीं, पीछे होय है। संस्कार कूटकी भी फल पुष्पादि धरैं पीछे शोभा होय है। और कैसा है दास ? निर्माल्यवाहिनः कहिये निर्माल्यका धरणहारा है। भावार्थ—स्वामी जिसका भोग कर चुका होइ तिसे ग्रहै है। संस्कारकूट भी देवताका निर्माल्य ग्रहै है। इसप्रकार दृष्टांतविषैं निर्माल्य धरनेके उपायकी सूचना है। संभवै तौ श्रद्धान करना। इहां कोई और पूछै—जो कोई निर्माल्य भक्षण करै है तिसे क्या दोष है ? तिसका उत्तर—निर्माल्यके दोय भेद हैं एक देवद्रव्य दूजा देवधन। जो नेवज आदि वस्तु देवता निमित्त निवेदन करिये, समर्पण करिये, चढाईये तिसे निर्माल्य द्रव्य कहिये है। अर पूजा चैत्यालय आदिका द्रव्य होइ तिसे देवधन कहिये तिनमें जो देव चढी वस्तु खाइ तिसे अंतराय कर्मका बंध होइ। अर जो देवधनकौं अंगीकार करै सो नरक जाइ। इहां कोई कहै कि यह बात कौनसे ग्रंथविषै कही है ? तिसका उत्तर—देवके नैवेद्य भक्षणकी साख तौ 'विघ्नकरणमंतरायस्य' इस सूत्रके विवरणविषैं है। तथा अमृतचंद्रसूरिकृत तत्त्वार्थसार नाम सूत्रकी वृत्ति है तहां है। तथाहि—

तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनं । अनाथदीनकृपणभिक्षादिप्रतिषेधनम् ॥ ५५ ॥
वधबंधनिरोधैश्च नासिकाच्छेदकर्तनम् । प्रमादाद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा ॥ ५६ ॥
निरवद्योपकरणपरित्यागो वधोऽगिनां । दानभोगोपभोगादिप्रत्यूहकरणं तथा ॥ ५७ ॥
ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा । इत्येवमंतरायस्य भवंत्यास्रवहेतवः ॥ ५८ ॥

इस कथनमें देवचढे नैवेद्य भक्षणका फल कह्या । दूजे देवधनके ग्रहणका फल कुंदकुंदाचार्यकृत रयणसारविषैं कह्या है । तथाहि, गाथा—

जीर्णुद्धारपइत्था जिणपूजावंदणविसेसधणं । जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठं णिरयगयदुक्खं ॥
पुत्तकलित्तविदूरो दारिद्दो पंगुमूकवहिरंधो । चडालादिकुजादो पूजादाणाइदव्वहरो ॥
गयहत्थपाइणासियकणउरंगुलविहीणदिट्ठी य । जो तिव्वदुःक्खमूलो पूजादाणाइ दव्वहरो ॥
खयकुच्छिमूलसूलाइ भयंदरजलोयरक्खुसरो । सीदुण्ह वह्मराई (?) पूजादाणंतरायकम्मफलं ॥

इहां कोई पूछै—देवपूजनविषैं तौ फल पुष्पादि सब चढै हैं, ऊपर नैवेद्यका ही ग्रहण क्यों

१ देव शास्त्र गुरुकी पूजाका मेंटना, अनाथ दीन और कृपणों की भिक्षाका निषेध करना, मारना बांधना कतरना और नाकका छेदना भेदना, देवके लिये चढाई गई द्रव्य का काममें लाना, निर्दोष उपकरणों का त्याग करना, प्राणियोंकी हिंसा करना, दान भोग उपभोग आदिमें विघ्न डालना ज्ञानका निषेध करना और धर्म कार्यों में अडचन खडी करदेना इन बातों से अंतराय कर्मका आस्रव होता है ॥ ५५–५८ ॥

२ जो मनुष्य जीर्णोद्धारके लिये वा जिनपूजनके लिये दिये गये द्रव्यका उपभोग करता है उसे नरक के तीव्र दुःख उठाने पडते हैं। वह पुत्र और स्त्री से वियुक्त हो जाता है। दरिद्री, पंगु, मूक, बहिरा, अंधा, लूला, लंगडा, और नकटा होता है। चंडालादि नीच कुलों में जन्म लेता है एवं क्षय कास सांस भगंदर जलोदर आदि प्राणघाती रोगोंका घर होजाता है ॥

किया? तिसका उत्तर—नैवेद्य शब्दकी रूढि तौ पक्वान्न हीमें है। और जो वस्तु देवताके निमित्त निवेदन कीजे तिस सबहीकों नैवेद्य कहिये । निवेद्यते इति नैवेद्यं । फेरि कोई और पूछै—देव चढी वस्तु खाइ तौ अंतरायकर्मका आश्रव होइ । और देव चढी गंधमालादिका ग्रहण नासिकासौं होइ तिसका क्या दोष है ? तिसका उत्तर—गंधमालादि देव चढीकों सुगंधिके निमित्त सूंघै तौ दोष है असाता वेदनीयका आस्रव होइ। मध्यस्थतामें दोष नाहीं । समवशरणादिमें अनेक सुगंध सामग्रीसौं पूजा करै हैं तहां नासिकामें सुगंध आवै है कि नाहीं।

चर्चा ८४ वीं—पूजाके समय दीप जोइकैं चढावना जोग्य है कि नाहीं ?

समाधान—अष्टप्रकारी पूजा अनादि निधन है । दीप जोवनेका निषेध क्योंकरि संभवै ? ऐसा कहीं कह्या नाहीं—चौथेकालमें अष्ट द्रव्यसौं पूजा कीजे । पांचवे कालमें सातसौं कीजे। तिसतैं जापूर्वक सोनेकी तथा रूपेकी ढकनी समेत दीपककी आरती कराइये तहां कपूरकी वातिकों घृतसौं जोय प्रभुके आगैं चढाइये। बडे पुण्यका कारण है। तदुक्तं श्रीयोगेंद्रदेवैः—

दीवइ दीणइ जिणवरहं मोहहं होइ णट्ठाई। अइ उववासइ रोहिणि सोय वियलहं जाई ॥(?)

पद्मनंदिमुनिनाऽप्युक्तं (पद्मनंदिमुनिने भी कहा है)—

आरार्तिकं तरलवन्हिशिखं विभाति स्वच्छे जिनस्य वपुषि प्रतिबिंबितं यत्।
ध्यानानलो मृगयमान इवावशिष्टं दग्धुं परिभ्रमति कर्मचयं प्रचंडं ॥

१ चंचल शिखा से सुशोभित और जिनेंद्र भगवान के निर्मल शरीर में प्रतिबिंबित आरती की लौ बचे खुचे कर्मों को जलानेके लिये ढूंढती हुई ध्यानाग्नि सरीखी मालूम पडती है ॥

अर त्रिकाल पूजामैं पूर्वान्हिक पूजा अष्ट द्रव्यसौं कही है। मध्यान्ह पूजा उत्तम पुष्पनिसौं है। अपरान्हिक पूजा दीप धूपसौं है। प्रभुके वामांग धूप खेइये, दाहिने अंग दीप धरिये। इ-सप्रकार त्रिकाल पूजाकी विधि है गृहस्थकैं अग्न्यादिका आरंभ आवश्यक है। तहां यत्न करतैं त्रसका घात बचै है। थावरकी हिंसाका बचाव सर्वथा नहीं पलै। तिस दोषके उतारनेकूं गृह-स्थके षट् कर्मविषैं प्रथम देवपूजन है। तहां अरुचि किये गृहस्थ क्रियाका दोष काहेसूं उतरै? इह जान अष्टप्रकारी पूजामें दोष न जानना।

चर्चा ८५वीं—कलिकुंडदंडकी पूजाका क्या स्वरूप है?

समाधान—हूंकारं ब्रह्मरुद्धं इत्यादि बीजाक्षरमयी पार्श्वनाथसंबंधी यंत्र है। तिसे कलिकुंड-दंड संज्ञा है। तिसकी पूजा काम्यपूजा है। गृहस्थको कोई जातिका उपसर्ग उपज्या होइ तो तिसके विनाशका कारण है। इहां कोइ पूछै—जो कलिकुंडदडंकी पूजासौं विघ्न जाते रहे हैं तो पूजा करनेवालेंकूं विघ्न क्यों उपजै हैं? तिसका उत्तर—यथावत् प्रतीतिपूर्वक नीतिवान् पुरुष आराधन करै तो विघ्न मिटै। अर निकाचितकर्मका फल न मिटै तो कलिकुंडदंडकी शक्ति हीन न कहिये। जातैं निकाचित कर्मका फल भोगै बिना जाइ नाहीं ऐसा नियम है। जैसैं सीताजीने दुःख स्वप्नके भयसूं अनेक पूजा प्रभावनारूप शांति कर्म कीने परन्तु उनका निकाचित कर्मका फल मिटा नाहीं तो पूजा निष्फल न कहिये। इहां कोऊ पूछै-विघ्नके भयसूं कलि कुंड दंडकी पूजा कीज तो मिथ्यात्वका दोष लगा कि नाहीं? तिसका उत्तर—कलिकुंडदंडनाम पार्श्वनाथसंबंधी यंत्रका है। सो पार्श्वनाथसंबंधी यहु जानना। फेरि बोल्या—जो विघ्नका भय

मान्या तो सम्यक्त्वका निःशंकित अंग कहां रह्या? जब निःशंकित अंग गया तब सम्यक्त्व कहां रह्या? तिसका उत्तर—विघ्नके भयसूं देवतांतरकी पूजा करै तब सम्यक्त्व जाय। जैनाम्नायकी पूजाविषैं सम्यक्त्व न जाय। शंका कांक्षानाम अतीचार लागै। कोई पूछै—कलिकुंडदंडका अर्थ क्या? उत्तर—

केलिशब्देन क्लेशो यस्तस्य कुंडः समूहकः। तदंतको महादंडं पार्श्वनाथ इतीरितः॥

चर्चा—८९वीं—अठानिका पर्वके अवसर देवता नंदीश्वर द्वीप विषै जाय हैं, ते आठ दिन वहां ही रहै हैं कै नित जाय हैं?

समाधान—कातिक फागुन अषाढ महीने उजाली अष्टमीतैं जांय, दोय दोय पहर च्यारो दिशामें निरंतर पूजाकरैं। ऐसैं आठो दिन नंदीश्वरद्वीपविषैं वितावैं। उक्तं च त्रिलोकसारमध्ये (त्रिलोकसारमें कहा है)—

पडिवरिसं आसाढे तह कत्तियफग्गुणे य अट्ठमिदो।
पुण्णादिणोत्ति यभिक्खं दो दो पहरं तु ससुरेहिं॥ १७६॥
सोहम्मो ईसाणो चमरो वइरोचणो पदक्खिणदो।
पुव्ववरदक्खिणुत्तरदिसासु कुव्वंति कल्लाणं॥ १७७॥

---

१ कलि शब्दका अर्थ क्लेश है। कुंड शब्दका अर्थ समूह है। दंडका अर्थ नाशक है। अर्थात् क्लेशके समूहको नाश करने वाले पार्श्वनाथस्वामीकी पूजा।

चर्चा ८७वीं—देवता नंदीश्वरादिके उत्सवविषै पृथक्विक्रियाकी देहसूं जाय हैं मूल शरीर अपने स्थान रहै। सो क्या चेष्टा करै ?

समाधान—विषय सेवनादिरूप चेष्टा न करै, योग्य चेष्टा करै। तदुक्तं त्रैलोक्यप्रज्ञप्तौ (त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें कहा है)—

यम्मा बयार पहुदिसु उत्तरदेहा सुरा ण चिट्ठंति। जम्मणठाणे सुसहं मूलसरीराणि चेठंति ॥(?)

चर्चा ८८वीं—ऊपर लिख्या देवता पृथक् विक्रियाकी देहकरि देशांतरविषै जाय हैं। सो पृथक् विक्रिया क्या कहावै ?

समाधान—पृथक् कहिये और जुदी देहरूप विक्रिया करनेकौं देवता समर्थ हैं। जैसी देह तथा अपने पुण्यानुसार जितनी देह धरा चाहै तितनी धरै। इस प्रकार नारकी पृथक् विक्रिया करसकै नाहीं। अपने शरीरहीविषैं अशुभाकार विक्रिया करै। यातैं नारकीनिकै अपृथक् विक्रिया जाननी। उक्तं चादिपुराणे—

श्लोक—अपृथक्विक्रियास्तेषामशुभा दुरितोदयात्। ततो विकृतबीभत्सविरूपात्मैव सा मता ॥

आचारसारेऽप्युक्तं वीरनंदिमुनिना (श्रीवीरनंदिमुनिने आचारसारमें कहा है)—

नारकाणां खरः कायो ऽत्यशुभाभिन्नविक्रियाः। करालःकालो दुर्गंधो धातूनोंऽतर्मुहूर्त्ततः ॥

चर्चा ८९वीं—देवतानिकी देह धातुवर्जित है। जिन देवतानिकैं मनुष्यनिकैसा स्त्रीपुरुष संबंधी भोगव्यवहार है। तिनकैं रतिका अवसान क्योंकरि हो है ?

समाधान—जैसैं मनुष्य तिर्यंचनिकैं वेदकी उदीरणाके दोय कारण हैं। एक तो चित्त

कारण है। दूजो वीर्यनामा धातु कारण है। तैसैं देवतानिकै नाहीं। उनकै गीतनृत्यादिका कारण पाय चित्तहीसौं वेदकी उदीरणा हो है। चित्तहीसौं मिटै है। ऐसैं त्रैलोक्य प्रज्ञप्तिविषैं कह्या है—
असुरादीभवणसुरा सव्वे ते हुंति कायपडिचारा। वेदस्सोदीरणाए अणुभवणं माणसस्समरा॥
धातुविहीणंतादो रेदविणिग्गमणमछीणंहुत्ताणं। संकप्पसुहं जायदि वेदस्सोदीरणाविगमे।

चर्चा ९०वीं—अढाई द्वीपके बाहिर मनुष्यनिका बाल न जाय ऐसा कहनावतिमे सुना है। सो क्यों कर है?

समाधान—पुष्करार्ध द्वीपके मध्य मानुषोत्तर पर्वत है। तिसके परै मनुष्य नाहीं जाय। विद्याधर तथा ऋद्धिधारी साधु भी न जाइ। याहीतैं पर्वतका नाम मानुषोत्तर है—मानुष्यांकै परै है मनुष्य उरै हैं। 'प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः' इति सूत्रात्। तातैं अढाई द्वीपके बाहिर मनुष्य न जाइ। यह नियम है। अर मनुष्यका बाल बाहिर न जाइ इह कहनावत है सो शास्त्रोक्त नाहीं। ऐसैं होय तो तीर्थंकरके बाल बाहिर क्यों गये?

चर्चा ९१वीं—अढाई द्वीपविषैं २९ अंक प्रमाण मनुष्य कहे हैं तिनमें तीन चार भाग द्रव्यस्त्री हैं। तिस अढाई द्वीपका विस्तार पैतालीस लाख योजन प्रमाण गोल है। तिसकी परिधि एक किरोड बियालीस लाख तीस हजार दोयसै उनचास योजन एक कोश सत्रहसै छ्यासठ धनुष पंचांगुल मात्र है। तिस क्षेत्रके अंगुल पचीस अंक प्रमाण फल है। विदेहादि क्षेत्र तथा चतुर्थ कालकी अपेक्षा ये आत्मांगुल हैं। अपेक्षाविना प्रमाणअंगुल जानने। उत्सेधांगुल नाहीं। इहां अब यह संदेह—पचीस अंक मात्र क्षेत्रविषैं उनतीस अंकप्रमाणमात्र मनुष्य क्योंकरि समाए?

समाधान—पचीस अंकके प्रमाण अंगुल सो उनतीस अंक प्रमाण मनुष्य संख्यात गुणे हुवे सब समाये और घना क्षेत्र खाली रह्या। यह आकाशसंबंधी अवगाहन शक्तिकी विचित्रता है संदेह न करना। इह कथन गोम्मटसारके जीवकांडमें छठे अधिकारविषै देखना।

चर्चा ९२ वीं— पर्याप्त अपर्याप्तका स्वरूप क्या ?

समाधान—पर्याप्तके छह भेद हैं—आहार, शरीर, इंद्रिय सासोश्वास, भाषा, अर मन। इन छहो पर्याप्तिविषैं पर्याप्ति नामकर्मके उदय एकेंद्रियादि जीव स्वयोग्य पर्याप्ति पूर्ण करै। अपर्याप्त नामकर्मके उदै अलब्ध पर्याप्त होय। एक पर्याप्ति भी पूरी न करै। कोई कहै—तीसरा भेद अपर्याप्त किस कर्मके उदयसौं होइ है ? तिसका उत्तर—अपर्याप्त भी पर्याप्त नामकर्मके उदयतैं हो है। काहे तैं ? जो जीव पर्याप्त होना है सो जब ताई शरीर पर्याप्ति पूरी न करै तिसै तब ताई अपर्याप्त कहिए। शास्त्रविषैं इसे निवृत्यपर्याप्त संज्ञा है। निवृत्ति कहिए शरीरकी निष्पत्ति ताकरि अपर्याप्त ताकरि अपूर्ण है। इह कथन गोम्मटसारविषैं जानना।

चर्चा ९३ वीं—पर्याप्तिविषैं और प्राणविषैं क्या भेद है ?

समाधान—प्राणके दश भेद हैं। इंद्रिय प्राण ५, मनोबल १, वचनबल २, कायबल ३, श्वासोच्छ्वास ४, आयु ५, एवं १०। इन प्राणनिविषैं अर पूर्वोक्त पर्याप्तिविषैं यहु भेद है—पर्याप्ति योग्य शक्तिकी उत्पत्तिकौं पर्याप्ति कहिए। तिस ही पर्याप्तिकी परिणतिकौं प्राण संज्ञा है। शक्तिरूप पर्याप्ति, व्यक्तिरूप प्राण। तिनमें एकेंद्री पर्याप्तिके च्यारि प्राण हैं। स्पर्शनेंद्रिय १, कायबल २, श्वासोश्वास ३, आयु ४ ये दश प्राणनिविषैं च्यारि प्राण हैं। वेंद्रीकैं जीभ वचन समेत छह

समाधा

प्राण हैं। तेंद्रीकैं नासिका समेत सात प्राण हैं। चौइंद्रीकैं नेत्र समेत आठ प्राण हैं। असैनी पंचेंद्रीकैं कान समेत नव प्राण हैं। सैनी पंचेंद्रीकैं मन समेत दश प्राण हैं। अर अपर्याप्त अलब्धपर्याप्त एकेंद्रियकैं श्वासोच्छ्वास विना पूर्वोक्त तीन प्राण हैं। वेंद्रीकैं श्वासोश्वास भाषा विना च्यारि प्राण हैं। तेंद्रीकें श्वासोश्वास भाषा विना पांच प्राण हैं। चौइंद्रियकैं श्वासोच्छ्वास भाषा विना छह प्राण हैं। पंचेंद्रीकैं सैनीकैं वा असैनीकैं श्वासोच्छ्वास भाषा मन इन तीनों विना सात प्राण है। इहां कोई संदेह करै (फेरि पूछै)—अलब्धपर्याप्त सम्मूर्छन मनुष्य हम दश प्राणके धनी सुने हैं। इहां सात प्राण क्यूं कहे? तिसका उत्तर—श्वासोच्छ्वास भाषा अर मन इन तीनो प्राणका उदय अपर्याप्त कालमें नाहीं, जातैं सात ही कहे। इहां भी एक संदेह रह्या—अलब्धने तौ कोई पर्याप्ति पूरी करी नाहीं, तिसकैं सात प्राण किस अपेक्षासौं कहे? तिसका उत्तर—जातिकी अपेक्षासौं कहे। जैसैं कोई पंचेंद्री जीव गर्भ विषैं उपज्या होइ। उसके अंतर्मुहूर्त्त ताईं तौ कोई इंद्री नाहीं। परन्तु जातिकी अपेक्षा पंचेंद्री कहिए। उसके घातसूं पंचेंद्रियकी हिंसा होइ। ऐसैं अपर्याप्तकालविषैं सबकैं सात प्राणसंबंधी कर्मका उदय पाइए। इस अपेक्षा सातप्राण कहे। फेरि पूछै—जातिकी अपेक्षासौं अलब्धके सात प्राण कहे तौ जातिमें तौ अलब्ध मनुष्य छे नहीं। मनुष्य जाति असैनी होइ नाहीं। तिसकैं मन प्राणका निषेध काहेकूं कीना। तिसका उत्तर—ऊपर कह्या अपर्याप्त कालविषैं सात प्राण हीं का उदय है तीनका नाही। वही हेतु जानना।

चर्चा ९४ वी—अलब्ध पर्याप्त मनुष्य कहां कहां उपजै है?

समाधान—चक्रवर्तीकी पट्टराणी विना कर्मभूमिकी स्त्रीनिके योनि कांख स्तनमूलविषैं अ-

तिसूक्ष्म सम्मूर्छन मनुष्य निरंतर उपजै हैं। अर तिनके मल मूत्र खखारादि अशुचि स्थानविषै भी उपजै हैं। यह कथन गोम्मटसारके जीव समासाधिकारविषै जानना।

चर्चा १५ वीं—निगोदके पांच गोलक हैं—खंध १ अंडर २ आवास ३ पुलवी ४ शरीर ५ सात नरकके हेठें सुने हैं ते क्योंकर हैं?

समाधान—ए निगोदके पांच गोलक हैं ते वादर निगोद संबंधी शरीरके भेद हैं। इनके आश्रय वादर निगोद रहै हैं। सूक्ष्म निगोद निराधार है सो सर्वत्र जानना। ऐसा लोकका प्रदेश कोई नाहीं जहां सूक्ष्म निगोद न पाइए। "सवत्थ निरंतरा सुहुमा" इति वचनात्। अर आश्रयविषैं वर्तमान जु है वादर निगोद सो आठ जायगा न होइ और सर्वत्र है। तदुक्तं गोम्मटसारे—

पुडवीआदिचउण्हं केवलआहारदेवनिरयाणं।
अपदिट्ठिदा णिगोयहि पदिट्ठिदंगा हवे सेसा॥

अर्थ—पृथ्व्यादिचतुर्विधजीवांगानि—पृथ्वीकाय १ अप्काय २ तेजकाय ३ वायुकाय ४ इन चारो प्रकारके जीवनिका देह हैं ते 'च केवल्याहारदेवनारकांगाणि' बहुरि केवलीका शरीर, आहारक शरीर, देवका शरीर, नारकी शरीर ए च्यारो शरीर हैं ते "निगोदशरीरे अप्रतिष्ठिताः" वादर निगोद जीवनिके शरीरकरि अनाश्रित हैं। 'शेषाणि प्रतिष्ठितशरीराणि भवंति।' इन आठोंतैं वाकी रहे जे वनस्पतिकायादिके शरीर ते वादर निगोद जीवनिके शरीर करि आश्रित हैं। भावार्थ—वनस्पति नाम स्थावर कर्मके उदय जीव वनस्पति कायमें उपजै है। तिसके दोय भेद हैं—एक प्रत्येक शरीर है। दूजा साधारण शरीर है। एक जीवका एक शरीर

सो प्रत्येक, अर अनेक जीवनिका एक शरीर सो साधारण। बहुरि प्रत्येकके दोय भेद हैं। एक प्रतिष्ठित प्रत्येक, दूजा अप्रतिष्ठित प्रत्येक। वादरनिगोदकरि आश्रित होइ तिसे प्रतिष्ठित प्रत्येक कहिए। अर जो वादर निगोदकरि आश्रित न होइ सो अप्रतिष्ठित होय। तहां पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय, केवलीका शरीर, आहारक शरीर, देवताका शरीर, नारकीका शरीर ये वादर निगोद रहित आठो अप्रतिष्ठित प्रत्येक जानने। इनतैं वाकी वनस्पति काय, वेंद्री, तेंद्री, चौइंद्रिय, पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके शरीर, अवशेष मनुष्यानिके शरीर वादरनिगोद सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक जानने। इहां कोई कहे—प्रतिष्ठित प्रत्येक वादर निगोदसौं आश्रित कह्या सो क्यों? तिसका उत्तर—

पूर्वोक्त सूक्ष्म तो निराधार है यातैं वादरनिगोदका आश्रय प्रत्येक प्रतिष्ठित कह्या। इसवादर निगोद शरीरके पूर्वोक्त स्कंधादि पांच भेद हैं। इनहीकूं आश्रय प्रतिष्ठित प्रत्येक हैं सो पूर्वोक्त आठ स्थान विना सर्वत्र हैं सात नरकके हेठैं क्योंकरि संभवै? इहां कोई संदेह करै वनस्पति नाम स्थावर कर्मके उदय वनस्पतिकायमें स्थावर जीव उपजैहैं मनुष्य तिर्यंचका देह विषैं निगोद कह्या यहु कौन से स्थावर जीवका भेद है। तिसका उत्तर—इनकैं भी वनस्पति नाम स्थावर कर्मका उदय जानना।

चर्चा ९६ वीं—सूक्ष्म वादर निगोद जीवनिंकी आयुका प्रमाण क्या है?

समाधान—नित्य निगोद, इतरनिगोद, सूक्ष्म बादर सबकी आयु अंतर्मुहूर्त्त मात्र है। और पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकायके जीवकी भी आयु अंतर्मुहूर्त्त मात्र है "अंतोमुहुत्तमाऊ साहारणसव्वसुहुमाणं" इति उक्तत्वात्।

चर्चा १७वीं—आयुके स्थिति बंधविषैं उत्कर्षण कह्या है सो किस प्रकार है?

समाधान—जहां बंधकी स्थिति बढै तिसे उत्कर्षण कहिये। जहां बंधकी स्थिति घटै तिसकूं अपकर्षण कहिये। किसही जीवनै अपने तीव्र मंद मध्यम भावके अनुसार उत्कृष्ट जघन्य मध्यम चतुर्गतिसंबंधी आयुकी स्थिति भुज्यमान आयुके त्रिभागविषैं बांधी होय। सोही जीव तिस ही काल तथा कालांतरविषैं भावांतरसौं स्थिति बढती करै तिसे उत्कर्षण कहिये स्थिति घटावै तिसे अपकर्षण कहिए। यह उत्कर्षण अपकर्षणका स्वरूप है। इहां कोई कहै हम तौ यों सुनी है कि—आयुके बंधकालविषै ही उत्कर्षण अपकर्षण होइ पीछै नाहीं। तिसका उत्तर—पीछे भी होय है। तिसका उदाहरण—एक खदिरसार नाम भीलपति था। तिन समाधिगुप्त साधुके उपदेशसौं काकमांसका त्याग किया। कालांतरविषै रोगी हुवा। वैद्यने कांकमांस बताया। खदिरसारने कहा—सत्पुरुष होइ सो छोडी वस्तु खाय नाहीं। इह सुन सूरपुरका राजा सूरवीर खदिरसार का बहिनोई तिसे मांस खवावने चल्या। मार्गमें वटवृक्षके नीचे एक यक्षिणी रुदन करती देखी। सूरवीरने पूछा—तू कौन है? क्यों रोवै है? वह बोली—मैं यक्षिणी हों। तेरा साला रोग पीडित है। काक मांसके नियोगसौं मेरा पति होनहार है। तू मांस भोजनसौं नरकका पात्र करणे चल्या है। तिसतैं रुदन करती हौं। यह सुनकरि सूरवीर बोल्या—मैं मांसभक्षण कराऊंगा तब अपनें सालेकूं देखि कही—जो काक मांससूं रोग जाय तो तुम तिसका उपाय करो। यह सुनि खदिरसार बोल्या तू मेरा प्राणसमान बंधु है। तोकूं श्रेय वचन कहने जोग्य हैं। ऐसा नरकका कारण अहित वचन क्यूं कहै है? मुझे मरण इष्ट है, प्रतिज्ञाभंग इष्ट नाहीं। इस भांति

खदिरसारका निश्चय देखि यक्षिणीका वृत्तांत कह्या। तिन मुनिकैं समस्त ही मांसका त्याग किया। श्रावकके व्रत लिये। देह त्याग करि सौधर्म स्वर्गविषै देवता हुवा! सूरवीर तिसकी अवसान क्रिया करि अपने नगरकों चल्या। मार्गमें वह यक्षिणीसूं पूछी—मेरा मिथुन (माला) तुम्हारा पति हुवा? यक्षिणी बोली—संपूर्ण व्रतके स्वीकारतैं व्यंतरगतिसूं पराङ्मुख सौधर्मकल्पके भोगोंका अनुभवन करै है। मेरा पति कहांसौं होइ? व्रतका माहात्म्य जानि सूरवीर समाधिगुप्तके समीप जाइ श्रावक हुवा। यह कथन चामुंडरायकृत चारित्रसारमें है इसप्रकार खदिरसार भिल्लपतिने व्यंतरकी तुच्छ आयु बांधी थी फेरि सौधर्म स्वर्गविषै दोय सागरकी आयु भोगी। इह आयुके उत्कर्षणका उदाहरण जानना।

अर राजा श्रेणिकने मुनीश्वरके कंठविषै मृतक सर्प डाला तिस काल सातवें नरककी तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु बांधी। फेरि श्रीवीरनाथके समवशरणमें क्षायिक सम्यक्त्वके बल प्रथम नरक संबंधी चौरासी हजार वर्षकी स्थिति रही यह प्रसंग बडे हरिवंशपुराणविषैं है। तथाहि श्लोक—

श्रेणिकेन तु यत्पूर्वं बह्वारंभपरिग्रहात्। परस्थितिकमारब्धं नारकायुस्तमस्तमे ॥
ततः क्षायिकसम्यक्त्वात् स्वस्थितिं प्रथमक्षितौ। प्राप वर्षसहस्राणामशीतिं चतुरुत्तरां ॥
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुः क्व चेयमपरा स्थितिः। अहो क्षायिकसम्यक्त्वप्रभावोऽयमनुत्तरः ॥

१ श्रेणिकने बहुतसे आरंभ और परिग्रहके वश जो सातवें नरककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर बाधी थी वह क्षायिक सम्यक्त्वके प्रभावसे प्रथमनरककी चौरासी हजार वर्षकी सिर्फ रह गई। सो देखो! कहां तो सातवे नरककी उत्कृष्ट स्थिति और कहां प्रथम नरककी जघन्य स्थिति। ठीक है—क्षायिक सम्यक्त्वकी महिमा अपरंपार है।

यह आयुके अपकर्षणका उदाहरण जानना। इहां कोई तर्क करै—श्रेणिक राजाने नरकायुकी उत्कृष्ट स्थिति छेदकैं क्षायिक सम्यक्त्वके बलसूं चौरासी हजार वर्षकी स्थिति राखी। उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तो यहु स्थिति बहुत ही अल्प रही। इतनीका छेद क्यूं न कीया? तिसका उत्तर—जो इतनी स्थितिका छेद होता तो गति छेद होता, सो नहीं ही होइ। तदुक्तं स्वामिकार्तिकेयटीकायां—

दुर्गतावायुषो बंधे सम्यक्त्वं यस्य जायते। गतिच्छेदो न तस्यास्ति तथाप्यल्पतरा स्थितिः॥

चर्चा ९८वीं—नेमिचंद्रकृत त्रिलोकसारविषै स्वर्गकी आयुका वर्णन इह भांति है—सौधर्म ईशानविषै जघन्य आयु एक पल्यकी है उत्कृष्ट सागर २। सनत्कुमार माहेंद्रविषै सागर सात ७, ब्रह्मब्रह्मोत्तरविषै सागर दस १०, लांतव कापिष्ठमें सागर १४, शुक्रमहाशुक्रमें सागर १६, शतार सहस्रारमें सागर १८, आनत प्राणतमें सागर २०, आरण अच्युतमें सागर २२, यातैं ऊपर एकेक सागर बढती, नौ नवग्रैवेयक ताईं तथा अनुत्तर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत ग्यारह स्थानविषै तेतीस सागर जाननी। तदुक्तं—

सोहम्म वरं पल्लं वरमुवहिवि सत्त दस य चोद्दसयं।
वावीसोत्ति दुवड्ढी एक्केकं जाव तेत्तीसं॥ ५३२॥

अर दशाध्याय सूत्रविषैं स्वर्गकी सर्वोत्कृष्ट आयुतैं बारह स्वर्गताईं कछु अधिक है। तथाहि—सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके। ४। २९। इति वचनात्। सौधर्म ईशानके युगलविषैं उत्कृष्ट आयु दोय सागरसौं कछु अधिक है। इस सूत्रके आगेसैं तीसरे सूत्रके अधिक तु शब्दके

ग्रहणतैं इह अधिक शब्द सहस्रार स्वर्ग पर्यंत अधिकारवान् जानना। इस भांति पूर्वोक्त स्वर्ग लोक की उत्कृष्ट आयुके कथनविषैं फेर हुवा। सो किस अपेक्षासौं है ?

समाधान—सूत्रविषैं सहस्रार स्वर्ग पर्यंत उत्कृष्ट आयु उक्त प्रमाणसौं अधिक कही है। सो घातायुकी अपेक्षासौं कथन है। जो बध्यमान आयु वृद्धिरूप होइ घटै तिसकी घातायुसंज्ञा है। तिस घातायुवाला जीव स्वर्गलोकविषै सम्यक्त्वकौं प्राप्त होइ तो तिस देवताकी अपने कल्पकी उत्कृष्ट आयुसौं अर्धसागर आयु बढै। तदुक्तं त्रिलोकसार मध्ये—गाथा

सम्मे घादेऊणं सायरदलमहियमा सहस्सारा।
जलहिदलमुडुवराऊ पडलं पडि जाण हाणिचयं ॥ ५३२ ॥

इहां कोऊ पूछे—सौधर्म ईशानके युगलसूं लेइ छह युगल पर्यंत आधा आधा सागर आयु बढै ऊपर क्यों न बढै ? तिसका उत्तर—ऊपर घातायुवाले जीवकी उत्पत्ति नाहीं है।

चर्चा ९९वीं—भुज्यमान आयुके त्रिभागशेषविषै परभवकी आयु बंधे है। सो क्योंकर बंधे है ?

समाधान—कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिकी आयुविषैं आठ अपकर्षण हैं। ते परभवकी आयुबंधकौं जोग्य हैं। तिसका विवरण—भुज्यमान आयुके अंश छह हजार पांचसौ इकसठ ६५६१। इतनेमैं दोय भाग बीते तीसरा भाग बाकी तिसके अंश दोइ हजार एकसौ सतासी २१८७। तिसका प्रथम अंतर्मुहूर्त्त परभवायुके बंधकौं जोग्य है। तहां न बंधे तो तिसका तीसरा भाग बाकी तिसका अंश सातसौ उनतीस ७२९ तिसका प्रथमांतर्मुहूर्त्त बंध जोग्य है। तहां भी न बंधे तो तिसका तीसरा अंश २४३ ताका प्रथम अंतर्मुहूर्त्त बंध जोग्य है। तहां भी न बंधै

तो तिसका तीसरा अंश ८१ अैसैं ही २७ अैसैं ही ९ अैसैं ही ३ अैसैं ही १ अंश ताईं जानना। ये आठ अपकर्षण हुवे। इनमें भी बंधका नियम नाहीं। बंधकौं जोग्य हैं। जो इनविर्षे आयुबंध न होइ तो भुज्यमान आयुका अंतकी आवलीका असंख्यातवां भाग बाकी रहै तहां परभवकी आयुका बंध अवश्य होय। इसका विशेष व्याख्यान गोम्मटसारके उत्तरार्धविर्षे है। तथाहि गाथा—

एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे। अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसे व सव्वत्थ ॥६४२॥

अर्थ—एकजीव एकमेव आयुः एकभवे योग्यकालेषु अष्टवारं बंधमेति—एक जीवविषै एक ही आयु एक ही भवमें योग्यकालनिविषैं आठवार बंधै है। तत्र सर्वत्र अपि त्रिभागशेष एव—तहां सब ही जागें त्रिभाग शेष है। भावार्थ—एकजीव एक भवकी भुज्यमान आयुमें एक परभवसंबंधी आयुकौं आठवार अपकर्षणकरि बांधै। तिन आठौ अपकर्षणानिमें त्रिभाग शेष सर्वत्र है। भुज्यमान आयुके भागानुसार परभवका आयु बंध है यातैं इनकी अपकर्ष संज्ञा जानना। आगे आठ अपकर्षविषैं बध्यमान आयुकी बध्यमान तीन व्यवस्था हो हैं। ते काहे सों होंइ सो कहै हैं—

इगिवारं वज्जित्ता वड्ढी हाणी अवट्ठिदी होदि। ओवट्टणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं ॥

अर्थ—अपकर्षायुर्मध्ये प्रथमवारं वर्जयित्वा—पूर्वोक्त आठो अपकर्षनिविषै पहिलीबार छांड के 'वृद्धिर्हानिरवस्थितिर्वा भवति' परभवसंबंधी आयुकी वृद्धि हानि तथा अवस्थिति होइ।

भावार्थ—प्रथम अपकर्षवार जो कछु आयुकी स्थिति बांधी होइ तिस बिना द्वितीयादिवार विषै बध्यमान आयुकी स्थिति बढै तथा घटै अथवा ज्योंकी त्यो भी रहे। तहां जो बढै है सो

प्रथमबारकी बंधी स्थितिके लेखे बधै, अर घटै है सो भी यही लेखे घटै है। पुनः जीवानां परिणामवशेन अपवर्त्तनं अपि भवति–बहुरि जीवोंके परिणामवशकरि बध्यमान आयुका ह्रस्वीभाव रूप अपवर्तन भी हो है। तदेव घात इत्युच्यते–तिसे ही अपवर्त्तन नाम घात कहिए। भावार्थ–आयुबंध करते जीवोंके परिणामनिका निमित्त पाइ बध्यमान आयुकी स्थिति घट जाइ, तिसकी अपवर्तन (कदली) घात संज्ञा है।

चर्चा १००वीं–आठकर्मविषै आयुकर्मकी स्थितिका क्षरण सातकर्मवत् है कि और प्रकार है?

समाधान–आयुकर्मकी स्थितिका क्षरण, सातकर्मकी स्थितिके क्षरणसूं और ही प्रकार है। सात कर्मकी स्थिति विशुद्ध परिणामनिके बलसूं अंतर्मुहूर्त्तविषै केई कोडाकोडी सागरोंकी घटै ऐसैं आयुकर्मकी स्थिति घटै नाहीं। आयुकी भवस्थिति समय समय ही करि पूरी होइ। एक समयविषैं एक ही समयकी घटै। ऐसैं आयुकर्मका क्षरण है। तिसके भेद २। एक क्रम, दूजा उपक्रम। जो आयुकी स्थिति समय समयकरि क्रमसौं पूरी होइ तिसे उपक्रमविना निरुपक्रम क्षरण कहिये। अर जो क्रमविना उपक्रमसौं एकही वार पूरी होइ जाइ तिससौं उपक्रम क्षरण कहिये। तहां प्रथम निरुपक्रम आयुवाले दूसरा नाम अनपवर्त्यायुवाले देवता नारकी तथा भोगभूमिवाले तिर्यंच मनुष्य असंख्यात वा संख्यातवर्षकी आयुवाले अर चरमोत्तम देहवाले इनकैं आयुकी स्थितिका क्षरण क्रमसौं हो है। दूजें सोपक्रमवाले दूजा नाम कदलीघात आयुवाले कर्मभूमिके मनुष्य वा तिर्यंच हैं। इनके आयुकी स्थितिका क्षरण क्रमसौं तथा विषम शस्त्रादिके योगकरि उपक्रमसूं भी एक ही वार कदलीकांडकी नाईं हो है। इह सोपक्रम आयु

की स्थिति पूर्वोक्त आठ अपकर्षनिसौं बंधे है। इहां सर्वत्र जीवके परिणामोंकाही हेतु जानना। इहां एक और संदेह उपज्या—ऊपर भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच असंख्यात तथा संख्यातवर्षवाले कहे। तहां असंख्यातवर्षवाले तो हैं संख्यातवर्षवाले क्योंकर हैं ? तिसका उत्तर—भरत ऐरावतमें तीसरे कालके अंत कुलकरोंकी आयु संख्यातवर्षकी रहै है। तिसतैं भोगभूमिवाले मनुष्यतिर्यंच समयाधिक कोडि पूर्ववाले भोगभूमिये जानने। इह कथन गोम्मटसारके लेश्याधिकारमें है।

इहां कोई यों कहै—आयुका घटती बढतीका कथन भलीभांति हमारे मनमें आवता नाहीं। तिसका उत्तर—इस कथनके निर्णयकूं दशाध्याय सूत्रकी फांकीका अर्थ विचारना। तथाहि—

औपपादिकचरमोत्तमदेहा असंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ अर्थ—एते अनपवर्त्यायुषो भवंति—इतने अनपवर्त्यायुवाले जानने। जिनकी आयुका अपवर्तन कहिये फेरफार न होइ समय समयसौं पूरी होइ, विष शस्त्रादिके योगकरि उपक्रमसौं पूरी न होइ ते अनपवर्त्यायुवाले जानने। ते कौन ? औपपादिकचरमोत्तमदेहा असंख्येयवर्षायुषः—औपपादिक कहिये देवनारकी, चरमोत्तमदेह कहिये तीर्थंकर असंख्येयवर्षायुषः कहिये भोगभूमिके तथा कुभोगभूमिके जीव। भावार्थ—चरमोत्तमदेहवाले तीर्थंकर यातैं कहे। चरमदेहवाले पांडवादिक उपसर्गकरि मुक्त हुये, उत्तमदेहवाले सुभौमचक्री तथा ब्रह्मदत्तकी अकालमृत्यु भई। जरत्कुमारके बाणसूं कृष्णजीकी अपमृत्यु हुई। इत्यादि सकलचक्री अर्धचक्रीनिके भी अनपवर्त्यायुका नियम नाहीं। इह कथन न्यायकुमुदचंद्रोदयनाम शास्त्र है तथा राजवार्तिकालंकार शास्त्र है तहां कह्या है। यातैं चरमोत्तमदेह तीर्थंकरकी ही है। इस सूत्रविषै यह सिद्धांत हुवा—देवनारकी तीर्थंकर भोग-

भूमिके जीव इनके विषशस्त्रादिक योगसौं आम्रफलके पाकवत् आयुकी उदीरणा न होइ। इन विना कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिविषै होइ। जैसैं प्रदीप तेलसौं भरा होइ, पवनके जोगसूं बुझिजाइ तैसैं पूर्ण आयुकी स्थितिका छेद निमित्तांतरसौं होइ जाय। यातैं पूर्वोक्त देवतादिके उदय मरण जानना। तदुक्तं—

छव्विह सुहुमा जीवा भोयभुवा चरमदेह णिरयंगा। उदये पाणविनासो सेसाणं उदीरणा भणिय।

एक और भी हेतु विचारना—उदीरणा मरण जगत्में न होइ तो दया धर्मोपदेश चिकित्सा शास्त्र ए सब ही व्यर्थ हुवे। इहां कोई पूछै—आयुकी उदीर्णा कौन शास्त्रमें कही है? तिसका उत्तर—जहां बंधादिक दशकरण कहे हैं तहां आयुविषैं संक्रमण विना नव करण कहे हैं। तिनमें उदीरणा भी कही है। अर गोम्मटसारके उत्तरार्धविषै भी कही है। तथाहि गाथा—

आवलियं आबाहा उदीरणमासिज्ज सत्तकम्माणं। परभविय आउगस्स उदीरणा णत्थि णियमेण॥

अर्थ—उदीर्णा आश्रित्य सप्तकर्मणां आबाधा आवलिमात्री स्यात्—उदीरणा प्रति आयु-बिना सातकर्मनिका आबाधाकाल आवलिमात्र है। भावार्थ—जब ताईं बंधा कर्म उदय उदीर्णारूप होइ न परिणवै ज्योंका त्यों रहै तितने कालकूं आबाधाकाल कहिये। सो उदय प्रति आयु बिना सातकर्म संबंधी कोडाकोडी सागरकी स्थितिका सौवर्षका आबाधा काल है इस लेखैं सत्तर कोडाकोडी सागरकी स्थिति ताईं जानना। अर आयुकर्मका आबाधा काल भुज्यमान आयुविषै पूर्वोक्त त्रिभाग शेष है। यह आबाधाकाल उदयप्रति कह्या। उदीर्णा प्रति सातकर्मका बाधाकाल आवलिमात्र है। परभवायुषः उदीर्णा नियमेन नास्ति—परभव संबंधी आयुकी

उदीर्णा सर्वथा न होइ। भावार्थ—निकाचित विना आबाधाकाल वीते उदयागत कर्मकी उदीर्णा हो है। तिसतैं बध्यमान आयुका आबाधकाल भुज्यमान आयुका त्रिभाग शेष है। तिसतैं परभव संबंधी आयुकी उदीर्णा कैसे होइ? एतावत् भुज्यमान आयुकी होइ। इहां कोई फेरि पूछै—विषशस्त्रादिके योगसों आयुकी स्थितिका छेद होइ यह बात हमारे चित्तविषै क्यूंही प्रवेश नहीं करै है? तिसका उत्तर—श्रीकुंदकुंदाचार्यने भावपाहुडमें कह्या है सो सुनो। गाथा—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थगहणसंकलेसेहिं। आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जये आऊ॥

अर गोम्मटसारविषै नेमिचंद्रजीने भी ये ही कह्या है। गाथाका उल्था—

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रघातसंक्लेशैः।
श्वासनिरोधाहारनिरोधहेतुभिरायुर्भिद्यते स कदलीघातः।

अर्थ—विषभक्षण, रोगकी वेदना, रुधिरका नाश, भयसौं झिझिकना, खड्गादिके घातका संक्लेश, उश्वासका अवरोधन, अन्नजलका निरोध इत्यादि कारणसौं आयुकी स्थितिका निरोध हो है। इसहीका नाम कदलीघात मरण है। कोई कहै—रुधिरके नाशतैं मरण क्योंकर होइ? तिसका उत्तर—चिकित्सा शास्त्रमें कहा है। श्लोक—

[1]जीवो वसति सर्वत्र त्रिसंस्थाने विशेषतः। त्रिभिःक्षयै क्षयं याति शुक्रे रक्ते तथा मले।

तथा बृहत्पद्मपुराणे संसारस्य विचित्रवर्णनावसरे कथितं (बडे पद्मपुराणजीमें संसारकी विचित्र दशाका वर्णन करते कहा है)—

---

१ जीव शरीरमें सब जगह रहता है परंतु तीन स्थानोंमें अधिक रहता है इसालिये वीर्य, रक्त और मलका क्षय होजानेसे शीघ्र ही मर जाता है।

क्लिश्यंते द्रव्यनिर्मुक्ता म्रियंते बालतासु च। पूर्वोक्तायुषि क्षीणे हेतुना चोपसंहृते।

अर्थ—अस्मिन् चित्रपटचेष्टिताकारे मानवलोके केचित् द्रव्यनिर्मुक्ताः क्लिश्यंते, केचित् पुनर्बालतासु बाल्यावस्थासु म्रियंते। कथं पूर्वोक्तायुषि क्षीणे—पूर्वमार्जितं यदायुः तस्य क्षये सति। कथं क्षय इत्यपेक्षायां हेतुना उपसंहृते—कारणान्तरेण कृतोपसंहारे संकोचरूपे इत्यर्थः। सारसमुच्चये कोलभद्रेणाप्युक्तं मनुष्यायुषः अनित्यत्वनिरूपणं—

अल्पायुषा नरेणेह धर्मकर्मविजानता। न ज्ञायते कदा मृत्युर्भविष्यति न संशयः॥

आयुर्यस्यापि देवज्ञैः परिज्ञाते हि जातके(?)। तस्यापि क्षीयते सद्यो निमित्तांतरयोगतः॥

इन दोय श्लोकनिमें यह तात्पर्य है—जिस मनुष्यकी आयु ज्योतिषी पंडितोंने लग्नादिके विचारसौं दीर्घ जानी है सो शीघ्र ही निमित्तांतरसौं क्षय होइ जाय। इस अर्थका उदाहरण लिखिये है—

प्रतिष्ठान नगरविषें दोय ब्राह्मण रहे—एकका नाम बराहमिहिर, दूजेका नाम भद्रबाहु। दोनो भाई दीक्षा लेने गए। आचार्यने बुद्धिमान देखि आपका पद भद्रबाहुकूं दीना। बराहमिहिरने आपकौं बडा जानि द्वेष मान्या। नगरमें ब्राह्मणका भेष पलटिके बराहसंहिता नामा ज्योतिष ग्रंथकरि आजीविका करणे लगा। एक पुत्र हुवा लग्नादिके बलसौं कही कै मेरे पुत्र हुआ है सो शतायु है। सौ वर्ष जीवैगा। भद्रबाहुने सुनिके कहा ज्योतिषके बलसौं कहै है सो

१ संसारमें बहुतसे प्राणी तो विना धनके दुःख पाते हैं, बहुतसे पहिले बांधी हुई आयुके नाना कारणोंसे क्षीण होजानेके कारण छोटी उम्रमें ही मर जाते हैं।

अन्यथा नाहीं, बालककी आयु सौ वर्षकी है। परंतु सातवें दिन निमित्तांतरसौं मंजारीके जोगसेंती बालककी मृत्यु होनी है। यह बात नगरके राजाने सुनी। बराहमिहिरसौं कही। बराहमिहिर बोल्या—महाराज! भद्रबाहु द्वेषभावसूं कहे है। मेरा ज्ञान अन्यथा नाही। राजा बोले जानियेगा यह बात तौ अपने हाथके विलस्तमध्य है। तिसके अनंतर सातवें दिन दूध पीवते बालकपै मंजारीके पावसूं आगल पाडि बालककी मृत्यु हुई। इसप्रकार आयु होतैं उत्तर निमित्तसौं मृत्यु हो है। उदीरणा मरण तथा अकाल मृत्युका एक और कल्पित दृष्टांत है।

किनही पुरुषने अवधिज्ञानी साधुसौं तर्क कीनी मेरे हाथमें चिडी है सो अल्पायु है कि दीर्घायु है। मुनि कही—इसकी मृत्यु तेरे हाथ है। और एक प्रसंग महापुराणविषैं है। जहां सगर चक्रीके समझावेनेकौं मणिकेतु नाम देव मृतक पुत्रकौं विक्रियाकरि ल्याया है। चक्रवर्तीसूं कहै है। इह प्रस्ताव है। तथाहि श्लोक—

तदा ब्राह्मणरूपेण मणिकेतुः समेत्य तं। महाशोकसमाक्रांतो वावेदयादिदं वचः ॥ ११४ ॥

१ तब मणिकेतु ब्राह्मणका रूप धारणकर सगरके पास आया और अत्यत शोक करता हुआ नीचे लिखे अनुसार वचन निवेदन करने लगा कि—हे राजन्! जब आप इस पृथ्वीके समूहका पालन कर रहे है तब इस क्षेत्रमें सब जगह क्षेमकुशल है। किंतु यमराजने जीवन (आयु) की अवधि रहते हुये भी मेरा पुत्र लेलिया है। यह पुत्र बहुत ही प्यारा था। अपनी पूरी आयु तक भी जीवित नहीं रह सका। विना उसकी इच्छासे यमरान आज उसे उठाकर लेगया। यदि आज ही आप उसे यमराजसे वापिस नहीं लावेंगे तो समझिये कि आपके देखते देखते--रक्षा करते करते आपके सामने ही वह मुझे भी ले जायगा क्योंकि अभिमानी लोग क्या २ नहीं करते हैं। जो कच्चे फलोंके खानेमें लोलुपी है क्या वह पके फलोंको छोड सक्ता है? कभी नहीं। ब्राह्मणकी इस बातको सुनकर राजा हंसा और कहने लगा कि--हे ब्राह्मण! क्या तू नहीं जानता है कि इस यमराजको सिद्धभगवान ही दूर

देवदेवे धराचक्रं रक्षति क्षेममत्र नः । किन्त्वंतकेन मत्पुत्रोऽहार्यो जीवितावधेः ॥ ११५ ॥
प्रेयान् ममैष एवासौ नायुषा तेन जीवितः । नानीतश्चेत्त्वया सोऽद्य तेन मामपि पश्यतः ११६
तव विद्धयग्रतो नीतं किं कुर्वंति न गर्विताः । शालाद्रुभक्षणे लोलः किं पक्कं तत्त्यजेदिति ११७
तदाकर्ण्याहसद्राजा द्विज ! किं वेत्सि नांतकः । सिद्धैरेव स वार्योऽन्यैर्नेत्यागोपालविश्रुतं ॥
अपवर्त्यायुषः केचिद्बद्धायुर्जीविनश्च ये । तान् सर्वान् संहरत्येष यमो मृत्योरगोचरः ॥११९॥
तस्मिन् वहासि चेद्वैरं जीर्णो माभूर्गृहे वृथा । मोक्षदीक्षां गृहाणाशु शोकं हित्वेत्युवाच तं १२०

इत्यादि उदीर्णा मरणके अनेक उदाहरण हैं । इहां एक और संदेह रह्या—जिस जीवकी आयु सौ वर्षकी ज्ञानमें प्रतिभासी होइ सो घटती क्यूंकरि होइ ? तिसका उत्तर—इह मनुष्य सौ वर्षकी आयु बांधकरि आया है । सो अपनी आयु समाप्तकरि मरैगा और यह मनुष्य आयुकी समाप्ति विना विष शस्त्रादिकके योगसौं उदीरणा मरण करैगा इसभांति ज्ञानमें प्रतिभासी है । सोही होइ अन्यथा नाहीं ।

चर्चा—१०१—छठे कालके अंत प्रलयविषै बहत्तर जुगलकूं विद्याधर लेजांयगे सो यह बात क्योंकर है ?

भगा देते हैं । सिद्धोंके सिवा अन्य किसीसे यह निवारण नहीं होसक्ता । इस बातको बालगोपाल सभी जानते हैं । इस संसारमें ऐसे कितने ही जीव हैं जिनकी आयु बीचमें ही छिद सक्ती है और कितने ही ऐसे हैं जिनकी आयु कभी बीचमें छिदती नहीं । जो पूरी आयुको भोगकर ही मरते हैं । परंतु जिसकी कभी मृत्यु नहीं हो सक्ती ऐसा यह यमराज उन सबका संहार कर डालता है । परंतु वह स्वयं कभी मृत्युके गोचर नहीं होता-सदा अमर ही बना रहता है । यदि तू उस यमराजके साथ वैर करना चाहता है तो तू घरमें रहकर व्यर्थ ही जीर्ण मत हो । शीघ्र ही शोक छोडकर मोक्ष जानेकेलिये दीक्षा ग्रहण कर ॥ १२० ॥ उत्तर-पुराण पर्व ॥ ४८ ॥

समाधान—नेमिचंद्राचार्य कृत त्रिलोकसारमें तो बहत्तरका नियम कीना नाहीं। छठे कालके अवसान समय संवर्त्तक प्रलय पवन चलैगा। पर्वत पृथ्वी वृक्षादि सब चूर्ण हो जांयगे। सर्व दिशानिके अंत ताईं भ्रमते जीव मरेंगे, मूर्छित होंइगे। विजयार्धपर्वतके तथा गंगासिंधु नदीके वेदीके निकट छिद्र विलादिविषै निकटवर्ती जीव प्रवेश करेंगे अर मनुष्यादि बहुतक जीवनिके जुगल विद्याधर तथा देव दयाकरि लेजांइगे। इस भांति कथन है।

संवत्तयणामणिलो गिरितरुभूपहुदि चुण्णणं करिय।
भमदि दिसंतं जीवा मरंति मुच्छंति छट्ठंते ॥ ८६४ ॥
खगगिरिगंगदुवेदी खुद्दविलादिं विसंति आसण्णा।
णेंति दया खचरसुरा मणुस्सजुगलादिबहुजीवे ॥ ८६५ ॥

चर्चा १०२वीं—वज्रवृषभ नाराच संहननका छेद भेद होइ कि नहीं ?

समाधान—वज्रवृषभनाराचसंहनन विना सातवें नरक न जाइ, सर्वार्थसिद्धि न जाइ, मोक्ष न जाइ। तहां नारायणके चक्रसौं पहिले प्रतिनारायणका घात हुवा। सुकुमाल स्वामी श्यालिनीके उपद्रवसौं सर्वार्थसिद्धि गये। गुरुदत्त पांडवादि उपसर्गहीसूं अंतकृत केवली होइ मुक्त हुये। इत्यादि अनेक प्रसंगविषै वज्रवृषभनाराच संहननका छेद भेद हुवा प्रसिद्ध है। इहां कोऊ पूछै—वज्रवृषभनाराच संहननका क्या स्वरूप है ? तिसका उत्तर—ऋषभ नाम वेठनका है। नाराच नाम कीलका है। संहनन नाम शरीरके हाडका है। जहां ए तीनू वज्रमय होंइ मांसादि अपने स्वरूप हो है तिसकूं वज्रर्षभनाराच संहनन कहिये। इहां कोऊ और पूछै—जो हाडवज्र-

मय होइ तो नारायणके चक्रसौं खंड क्यूं कर होइ ? तिसका उत्तर—नारायणके चक्रसौं खंड नहीं हुये हृदयभेद हुवा।

चर्चा १०३वीं—मनःपर्ययवाले उत्कृष्ट ढाई द्वीपवर्ती जीवनिके मनकी जानैं कि बाहरकी भी जानैं ?

समाधान—मानुषोत्तरतैं बाहर च्यारयो कोनोविषैं देवता रहै हैं तथा तिर्यंच रहै हैं। तिनके मनकी भी जानै। इहां कोई कहै—कर्मकांडकी भाषावचनिकामें मनुष्यलोक प्रमाण मनःपर्यय ज्ञानका विषय कह्या है। सो क्यों करहै ?

तिसका उत्तर—पैंतालीस लाख योजन प्रमाण मनुष्यलोक है। सोही पैंतालीसलाख जोजनप्रमाण मनःपर्ययका विषय है। विशेष इतना—इहां गोलाई और चौडाईकी अपेक्षा है। मनुष्य लोकका क्षेत्र गोल है। मनःपर्ययका विषयक्षेत्र चौकोर है। तिसतैं अढाई द्वीपके बाहिर कोनोंकी जानै। इह व्योरो गोम्मटसारके ज्ञानाधिकारमें है।

चर्चा १०४वीं—जातिस्मरणका क्या स्वरूप है ? और कुनसे ज्ञानका भेद है ?

समाधान—जैसैं रात्रिके स्वप्नका दिनमें स्मरण होइ, तैसैं अगलेभवका स्मरण वर्तमान भवमें होइ तिसे जातिस्मरण कहिये और यह भेद मतिज्ञानका है। इसमें एक संदेह इहां कोई कहै—हम तो अवधिज्ञानका भेद जानै हैं। मतिज्ञानका भेद किसभांति है ? तिसका उत्तर—श्री पार्श्वनाथ तीनज्ञान विराजमान तीर्थंकर भवस्मरणसौं लब्धबोध भये जो जाति स्मरण अवधिज्ञानका भेद होता तो पहिले ही लब्धबोध हुते। तदुक्तं महापुराणमध्ये पार्श्वनाथस्य वैराग्याव- सरे (सोही महापुराणमें पार्श्वनाथस्वामीके वैराग्य समय कहा है)—

साकेतनगराधीशो जयसेनमहीपतिः । भगलीदेशसंजातहयादिप्राभृतान्वितं ॥ १२० ॥
अन्यदाऽसौ निसृष्टार्थं प्राहिणोत् पार्श्वसंनिधिं । गृहीत्वोपायनं पूजयित्वा दूतोत्तमं मुदा ॥१२१॥
साकेतस्य विभूतिं तं कुमारः परिपृष्टवान् । सोऽपि भट्टारकं पूर्वं वर्णयित्वा पुरुं परं ॥ १२२ ॥
पश्चाद् व्यावर्णयामास प्रज्ञा हि क्रमवेदिनः । श्रुत्वा तत्तत्र किं जातस्तीर्थकृन्नाम बद्धवान् ॥१२३॥
एष एव पुनर्मुक्तिमापदित्युपयोगवान् । साक्षात्कृतविजानीतसर्वप्रभवसंततिः ॥ १२४ ॥
विजृंभितमतिज्ञानक्षयोपशमवैभवात् । लब्धबोधिः पुनर्लौकांतिकदेवप्रबोधितः ॥१२५॥

(तब साकेत नगरके स्वामी राजा जयसेनने किसी एक दिन भगली देशमें उत्पन्न हुए घोडे आदि अनेक तरहकी भेंट देनेके लिये पार्श्वनाथके समीप किसी दूतको भेजा । कुमार पार्श्वनाथने बडी प्रसन्नतासे वह भेंट ली, उस उत्तम दूतका आदर सत्कार किया और फिर उस दूतसे साकेत नगरकी विभूति पूछी । इसके उत्तरमें दूतने पहिले ही श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरोंका वर्णन किया और फिर अपने नगरका हाल कहा सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग अनुक्रमको भी अच्छी तरह जानते हैं । उसे सुनकर वे विचार करने लगे कि मैंने तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया इससे क्या लाभ हुआ ? यह तीर्थंकर नाम कर्मका बंध करना तबही उपयोगी हो सकता है जब कि यह जीव मुक्त हो जाय । इस तरह विचार करते हुए उन्होंने अवधिज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम होनेसे अपने पहिलेके भव प्रत्यक्षके समान जान लिये तथा उन्हें स्वात्मज्ञान प्रगट हुआ और उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकर समझाया ॥ १२०–१२५ ॥ पर्व ७३)

और भी केतेक तीर्थंकर भवस्मरणसूं विरक्त हुये। महापुराणविषैं कही है। तथा नरकमें भी विभंगावधि है। तहां तीसरे नरक ताईं जातिस्मरणसौं तथा धर्म सुननेसौं वेदनानुभवसौं सम्यक्त्व उपजै है। आगैं चौथेसौं सातवें नरकताईं जातिस्मरणसौं तथा वेदनानुभवसौं उपजै है। धर्म श्रवण तहां नाहीं। देवतानिके भी अवधि है। तहां जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनमहिमा दर्शन देवऋद्धिदर्शन सहस्रार स्वर्गताईं ए सम्यक्त्वके कारण हैं। आनतादि च्यारि स्वर्गनिमें देवऋद्धि दर्शन सम्यक्त्वका कारण नाहीं। और वाकी कारण हैं। नवग्रैवेयकविषैं जातिस्मरण धर्मश्रवण सम्यक्त्वकूं कारण है। तथा कोई सम्यग्दृष्टि अहमिंद्र शास्त्रकी परिपाटी करता होइ तिसका श्रवण जानना। आगैं अनुदिश अनुत्तरवाले पूर्वगृहीत सम्यक्त्व हैं यातैं तिनकैं जातिस्मरण धर्मश्रवणकी कल्पना नाहीं। तिर्यंच मनुष्यके जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनविंबदर्शन इत्यादि सम्यक्त्वके कारण हैं। इहां कोई संदेह करै—नारकी तथा देवकैं तौ विभंगावधिसौं पूर्व जन्मका स्मरण है। सो सम्यक्त्वका कारण नाहीं। जातिस्मरण कारण क्यूंकरि है? तिसका उत्तर—विभंगावधिके जोरसौं ज्ञान होइ सो सबहीकैं है यातैं सम्यक्त्वकौं कारण नाहीं। जातिस्मरण सहज ही होइ यातैं सम्यक्त्वकौं कारण है।

चर्चा १०५वीं—ज्योतिषी विमाननिके जोजन वा कोश छोटे हैं वा बडे हैं।

समाधान—ज्योतिषी विमाननिके जोजन तथा कोस शास्त्रमें बडे कहे हैं। एक जोजनके इकसठ भाग कीजे तिनमें छप्पन भाग चंद्रमाके मंडलका विस्तार है। अडतालीस भाग सूर्यका वि-

१ छप्पनभागका चद्रमाका विमान है। एसा पाठ भी है।

स्तार है। और ग्रह नक्षत्र तारागणविषैं उत्कृष्ट विमानका विस्तार कोश एक, जघन्य विस्तार कोश पाव तहां एक चंद्रमाका परिवार चंद्रमा इंद्र, सूर्य प्रतींद्र, अठाईस ग्रह अठाईस-नक्षत्र छ्यासठ हजार नवसै पचत्तर कोडाकोडी तारागण येह प्रमाण है। तहां उन्नीस अंक प्रमाण तारागणविषै जघन्य अंतर कोशका सातवां भाग, मध्य अंतर पचास जोजन, उत्कृष्ट परस्पर अंतर जोजन हजार १०० । इहां कोई संदेह करै—लाख जोजनका जंबूद्वीप है। सारे द्वीपका क्षेत्रफल सातसै नवै कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार एकसौ पचास जोजन कह्या है। तिसके दश अंक हो हैं। तहां उन्नीस अंक प्रमाण तारागण द्वीपके आधे क्षेत्रविषैं कैसैं समाये ? तिसका उत्तर—चित्रा पृथ्वीतैं सातसै नव्वै जोजनके ऊपर एकसौ दश जोजन प्रमाण ज्योतिष पटलकी मुटाई है। तिस पर्यंत तारागण जानना। फेरि पूछै यह बात कहां कही है ? तिसका उत्तर—त्रिलोकसारमें कहा है। गथा—

अत्थइ सणी णवसये चित्तादो तारगावि तावदिए।
जोइसपडलबहल्लं दससहियं जोयणाण सयं ॥ ३३४ ॥
आस्ते शनिः नवशतानि चित्रातः तारका अपि तावंतः।
ज्योतिष्कपटलबाहल्यं दशसाहितं योजनानां शतं ॥ ३३५ ॥

ऐसैं ही त्रिलोक प्रज्ञप्तिमें कहा है—

नवदिजुदसत्तजोजनसदाण गंतूण उवरि चित्तादो।
गयणतले ताराणं पुराणि बहले दुहूत्तरसदम्मि ॥

नवतियुक्तसप्तयोजनशतानि गत्वा उपरि चित्रातः।
गगनतले ताराणां पुराणि बहले दशोत्तरशतं ॥

चर्चा १०६ वीं—जंबूद्वीपमें दोय चंद्रमा दोय सूर्य कहे हैं। एक सूर्यका प्रकाश लाख योजनताईं सुना है सो क्योंकर है?

समाधान—सुमेरुकी प्रदक्षिणा करतैं निषिध पर्वतपै सूर्यका उदय इस भरतक्षेत्रविषैं तब होइ जब पर्वतकी भुजाके विस्तारमें पचपनसै पचहत्तर जोजन बाकी रहै हैं। तहां सूर्यके चलनेके एकसौ चौरासी मार्ग हैं। तिनमैं कर्ककी संक्रांतिके दिन प्रथममार्गविषैं उदय होय। तहांसे सैतालीस हजार दोयसै त्रेसठ योजन अयोध्या कुंड है। तातैं दूना चौराणवे हजार पांचसै छब्बीस जोजन सरस हुआ। आधे सुमेरु ताईं दाहिनी ओर समुद्रके छठे भागताईं बाईं ओर सूर्यके प्रकाशकी मर्यादा त्रिलोकसारमें कही है। पचपनसै पचहत्तर जोजन पूर्वोक्त निषिध पर्वतपै जाय तब सूर्यका अस्त जानना।

चर्चा १०७ वीं—आकाशसौं उल्कापात होय है लोकविषै तिसे तारा टूटा कहै हैं सो क्या है?

समाधान—तारागणोंके विमान तो शाश्वते हैं ते क्योंकर पडैंगे। ज्योतिषी देवकी जब आयु पूरी होय है उसकी देह गिरती देखाय है। इसका उदाहरण—बडे पद्मपुराणजी विषैं हनुमानजीके उक्त प्रस्तावमें जानना।

अथोपरि विमानस्य निषण्णः शिखिरांतके। प्राग्भारचंद्रशालायाः कैलासाधित्यकोपमे ॥
ज्योतिष्पथा समुत्तुंगात् पतत्प्रस्फुरितप्रभं। ज्योतिर्बिंबं मरुत्सूनुरालोकत तमोभवद् ॥

अचिंतयन्महाकष्टं संसारे नास्ति तत्पदं । यत्र न क्रीडति स्वेच्छं मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥
तडिदुल्कातरंगातिभंगुरं जन्म सर्वतः । देवानामपि यत्रान्यप्राणिनां तत्र का कथा ॥

इहां यह संदेह रह्या—देवता तो अपने विमानमें तिष्ठै हैं, उनकी देह क्यूंकर खिरती देखाय है। तिसका उत्तर—तिनके विमान वाहक देवतानिकी देह खिरती दिखाइ है।

चर्चा १०८वीं—परमाणूकौं षट्कोण कहनावतमें कहै हैं सो षट्कोण कथा होवै ?

समाधान—पुद्गलकी परमाणु निर्विभाग प्रदेश मात्र है। जिसका आदि मध्य अंत एक हो है। तिसमें षट्कोण क्यूंकरि संभवै ? यातैं जिस आकाशके प्रदेशविषै परमाणु है तहां षट् प्रदेशका स्पर्श है। च्यारो दिशाके च्यारि प्रदेशका स्पर्श है दोनों अधः ऊर्ध्व प्रदेशका स्पर्श है। यातैं परमाणुकूं षडंशत्व है षट्कोणत्व नाहीं। इहां कोई आशंका करै—पुद्गलकी परमाणु तो निरंश है तिसकूं एककाल एक प्रदेशविषै षडंशका योग है तो तिसकों अणुमात्र खंड कहो। परमाणु काहेकूं कहो हो ? तिसका उत्तर—यह तो तुम सांची कही। यद्यपि द्रव्यार्थिक नयकरि परमाणुकूं निरंशत्व है तो भी पर्यायार्थिक नयकरि षडंशत्व कहैं दोष नाहीं। तदुक्तं—

आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकं । स्कंधोपादानमत्यक्षं परमाणुं संप्रचक्षते ॥

अर्थ—परमाणुं एतादृशं संप्रचक्षते—परमाणु नाम वस्तुका ऐसा कहिये। कैसा है ? आद्यंतरहितं—आदि अंत रहित अनादि निधन है। और कैसा है ? द्रव्यं—द्रव्यरूप है। भावार्थ—पर्याय रूप थिर नहीं होइ, द्रव्यरूप पुद्गल परमाणु सदा अविनाशी है। और कैसा है ? विश्लेष रहितांशकं—अंशकी भिन्नतासौं रहित है। भावार्थ—पर्यायार्थिकसूं परमाणुविषै षडंशकी कल्पना

है। द्रव्यार्थिकसौं निरंश है। और कैसा है? स्कंधोपादानं–स्कंधरूप पुद्गलकौं कारण है। और कैसा है? अत्यक्ष–अतींद्रिय है। इंद्रियसौं ग्रह्या नाहीं जाय है। यह कथन गोम्मटसारके सम्यक्त्व प्ररूपणाधिकारमैं है। इहां कोई प्रश्न करे–परमाणुकी पुद्गलसंज्ञा कही सो काहे तैं? तिसका उत्तर–अपने स्पर्श रस गंध वर्णकरि स्कंधकी नाईं पूरण गलनरूप है यातैं पुद्गलके परमाणुकी पुद्गलसंज्ञा है। तदुक्तं, श्लोकः–

वर्णगंधरसस्पर्शपूरणं गलनं च यत्। कुर्वंति स्कंधवत्तस्मात् पुद्गलाः परमाणवः॥

इहां कोई फेरि कहै–वर्णादिके पूरण गलनसौं परमाणुकी पुद्गलसंज्ञा सिद्ध हुई। द्व्यणुकादिस्कंधकौं क्या कहोगे? तिसका उत्तर–द्व्यणुकादिस्कंध भी हैं ते अपने प्रदेशके पूरण गलन स्वभावकरि परिणवे हैं, परिणवेंगे, परिणवेथे। यों स्कंधकौं भी पुद्गल ही कहैं हैं। इहां कोई और पूछै–परमाणुका संस्थान क्या है? तिसका उत्तर–आदि पुराणके बीसवे पर्व विषै परमाणुका आकार गोल कह्या है। तथाहि श्लोकः–

अणवः कार्यलिंगस्य द्विस्पर्शाः परिमंडलाः। एकवर्णरसा नित्याः स्युरनित्याश्च पर्ययैः॥

और भी कोई पूछै–परमाणुका अनुमान क्या है? तिसका उत्तर–अनंतानंत परमाणु मिलैं तब एक अवसंज्ञा नाम स्कंधकी जाति होइ। आठ अवसंज्ञा मिलै तब संज्ञासंज्ञा नाम एक स्कंध होइ। आठ संज्ञा संज्ञा मिलैं तब एक त्रुटिरेणु नाम स्कंध होइ। आठ त्रुटिरेणु मिलैं तब उत्तम भोगभूमिका एक बालाग्र होइ। ये आठ मिलैं तब एक मध्यम भोग भूमिका एक बालाग्र होइ। ये आठ मिलैं तब एक जघन्य भोगभूमिका बालाग्र होइ। ये आठ मिलैं तब कर्मभूमिका एक

बालाग्र होइ। आगै लीक जूंक जुप तीनौं उत्सेधांगुलताई आठ आठ गुणे जानने। ऐसा परमाणुका स्वरूप सूक्ष्म जैनमैं कह्या है। इहां कोई सांख्यमती कहै है—ऐसी सूक्ष्मताविषैं तो परमाणुकी अनवस्थासी हुई जाइ है। तिसतैं सांख्यशास्त्रविषै परमाणुका लक्षण अच्छी तरह कह्या है। तदुक्तं सांख्यशास्त्रे, परमाण्वादिलक्षणं दर्शयति—

त्रसरेणुः बुधैः प्रोक्तः त्रिंशता परमाणुभिः। त्रसरेणुस्तु पर्यायेर्नाम्ना वंशी निगद्यते॥
जालांतरगते सूर्ये करैर्वंशी विलोक्यते। ताभिः षड्भिः मरीचिः स्यात् ताभिः षड्भिश्च राजकः॥

इन श्लोकनिविषैं इह तात्पर्य है-तीस परमाणुका एक त्रसरेणु होइ। तिसहीका दूसरा नाम वंशी है। वेई जालांतर प्राप्त सूर्यकी किरणकरि रोंवासे दिखाई देंइ। ए छह वंशी मिलें तब एक मरीचि नाम होइ। छह मरीचिकी एक राई होइ। एतावत् एक राईके एक हजार असी खंड होंइ। येही खंड प्रमाण परमाणुका परिमाण सिद्ध हूवा। इसतैं और सूक्ष्म वस्तु कछु नाहीं। याही हेतुमौं परमाणु संज्ञा है। इस प्रकार सांख्यमतवालेने परमाणुका लक्षण कह्या। तब जैनी कहैं हैं—यह तौ तुम सत्य कही परमाणुसौं और कछु सूक्ष्म वस्तु नाहीं। जाका दूसरा खंड न होइ तिसे परमाणु कहिये। यातैं एक राईके एक हजार असी खंडकरि परमाणुका प्रमाण कह्या। अपने जानैं तुम परमाणुकौं बहुत सूक्ष्मताकरि साधी परंतु परीक्षा करैं परमाणुका इह अनुमान बनता नहीं। काहेतैं राई राई बराबर दश हजार औषध एकत्र पीस चूर्ण कीजै तिपके एक राई मात्र चूर्णविषै कौनसी औषधि न आई? ऐसें एक राईके दश हजार खंड हुये इस प्रकार कल्पना करते लाख दशलाख क्रोड खंड होंइ। यातैं परमाणुका निर्विभाग स्वरूप तुम्हारे मतमें सिद्ध हुवा नाहीं। नीके विचार देखो। वस्तुका यथार्थ स्वरूप जैन ही सौं सिद्ध होइ है।

चर्चा १०९ वीं– शनीचरके विमानका वर्ण श्याम कहे हैं। बनारसीदासजीने भी नौग्रहके कवित्तमें श्याम ही लिख्या है। सो कैसा है?

समाधान–त्रिलोकप्रज्ञप्तिनाम ग्रंथमैं शनिश्चरका विमान सुवर्णमयी कह्या है। तथाहि गाथा-

चित्तोवरिमतलादो गंतूणय णवसयाइ जोयणाइं।
उवरि सुवण्णमयाइं सणिणयराणि णहे हुंति॥

अर्थ–चित्रापृथ्वीतैं नौसौजोजन ऊपर शनिश्चरका स्वर्णमयी पटल मध्यलोकमें हैं यह बहु वचनका प्रयोजन जानना। तथा बडे हरिवंशपुराणमें भी इसी भांति है। तथाहि–

शनैश्चरविमानानि तपनीयमयानि च। अंगारकविमानानि लोहिताक्षमयानि च॥

चर्चा ११० वीं–सुमेरु पर्वतकी ऊंचाई स्कंधसमेत लाख जोजनकी है। तिसके ऊपरि चालीस जोजन ऊंची वैडूर्यमणिमयी चूलिका है। सो लाखजोजनमें गर्भित है कि जुदी है?

समाधान—सुमेरुपर्वत हजार योजन स्कंधमें है और पृथ्वीसौं पांचसै जोजन ऊपर नन्दनवन है। तिसके साढे बासठ हजार जोजन ऊपर सौमनस वन है। तिसके छत्तीस हजार जोजन ऊपर पांडुक वन है। तिसके मध्य चालीस जोजन ऊंची चूलिका है। तिसतैं लाख जोजनमें गर्भित नाहीं जुदी है। इस भांति बडे हरिवंशपुराणजीमें कहा है। तथाहि श्लोकः–

विदेहक्षेत्रमध्यस्थकुरुक्षेत्रद्वयावधि। योजनानां सहस्राणि नवतिर्नवचोच्छ्रितः॥
मेखलात्रयसंयुक्तः ख्यातो मेरुर्महीधरः। ऊर्ध्वं चूलिकयोद्भाति स चत्वारिंशदुच्छ्रयः॥

चर्चा१११वीं–सुमेरु पर्वत हजार योजन स्कंधमें है। सो स्कंध हजार योजन की मोटी चित्रा पृथ्वीविषै है। वह चित्रा पृथ्वी मध्यलोक संबंधी कि अधोलोक संबंधी है?

समाधान—मेरुपर्वत की ऊंचाई स्कंध समेत लाख योजन की है। तिहतैं यह चित्रा पृथ्वी मध्य लोकसंबंधी है। अधोलोक संबंधी जुदी है। वह चित्रा रत्नप्रभा नाम पहिली पृथिवीके खर भाग का पहिला पटल है हजार योजन की मुटाई उसकी भी जानना। यह कथन विस्तार रूप त्रिलोकसारविषै है।

चर्चा ११२वीं—छठे गुणस्थानवर्ती मुनिकै आहारकशरीर सन्देह निवारण निमित्त निकसे है कै और निमित्त भी निकसै है?

समाधान— औदारिक शरीरसौं अगोचर दूर क्षेत्र विषै केवली श्रुतकेवली होंइ, तिनके निमित्त आहारक शरीर निकसै तथा निःक्रमणादि तीनकल्याणकके वर्तमान हुवे निकसे अथवा अढाई द्वीपवर्ती तीर्थजात्रादि निमित्त भी उद्यमी मुनिराजके निकसै। यह कथन गोम्मटसारके वेद मार्गणाधिकार विषै है। तथाहि गाथा—

णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे। परखेत्ते संवित्ते जिणजिणघरवंदणट्ठं च॥

चर्चा ११३ वीं—मुनिराजके षडावश्यककी क्रियामें कांही कांही फेर है। यत्याचारमें क्यों-कर है?

समाधान—सामायिक १ श्रुत २ वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ ये छह आवश्यक क्रिया के नाम हैं। गाथा—

समदा य थोववंदण पडिक्कमणं तहेव णायव्वं। पच्चक्खाण विसग्गो करणीयावासया छप्पा॥ १३०

तथा चोक्तममृतचंद्रसूरिणा (ऐसा ही श्रीअमृतचंद्रसूरिने कहा है)—

इदमावश्यकषट्कं समतास्तववंदनाप्रतिक्रमणं। प्रत्याख्यानं वपुषो व्युत्सर्गश्चेति कर्तव्यं ॥
ये छहों क्रिया साधुकैं सामायिक कालविषै जानना।

चर्चा ११४वीं–तीर्थंकरके समवसरणमें तीन वार वाणी खिरै सोई मुनीश्वरोंके सामायिकका समय है। ये दोनों कार्य एक काल क्योंकरि संभवैं ?

समाधान–पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, अर्धरात्र ये च्यार काल हैं। छह छह घडी पर्यंत तीर्थंकर प्रभुकी वाणी खिरै है। अर मुनिराजके सामायिक संबन्धी तीनही काल हैं। अर्धरात्र नाहीं। तिनकी मर्यादा जुदी है। इहां तिसका व्यौरा– पूर्वाह्न सामायिक च्यारि घडी रात्रिसौं होइ, सूर्योदय ताई तिसकी समाप्ति है। मध्याह्नकी सामायिकका काल दोय घडी है। फेर अपराह्न की सामायिकका काल च्यारि घडी है। नक्षत्र दर्शनसौं तिसकी समाप्ति है। इहां कोई पूछे यह मुनिके सामायिक कालकी मर्यादा कहां कही है? तिसका उत्तर–इंद्रनंदी आचार्यकृत नीतिसार ग्रंथविषै कही है। तथाहि श्लोक–

घटिचतुष्टये रात्रौ कुर्यात् पूर्वाह्नवंदना। मधाह्नस्यापि नियमो नाडीद्वयमुदाहृतं ॥
अपराह्ने तु नालीनां चतुष्टयसमाहितं। नक्षत्रदर्शनान्मुंचेत् सामायिकपरिग्रहं ॥

चर्चा ११५वीं–अभिन्नदशपूर्वी साधु कौनसे कहिये ?

समाधान–विद्यानुवाद नामा दशम पूर्व पढिकैं सराग न होंय तिनकौं अभिन्नदशपूर्वी साधु कहिये। यह बात मूलाचारविषै कही है।

चर्चा ११६वीं– अष्टप्रकारी पूजा विषै जलादिका आरंभ होइ। इस आरंभका मुनिराज उपदेश करैं की नाही ?

समाधान—अष्टप्रकारी पूजाविषैं बडा पुण्य है। इस पुण्यकी प्रशंसा वचनगोचर नाहीं। तिसतैं सर्वारंभके त्यागी मुनिराज पूजाका उपदेश करैं। इस भांति प्रवचनसारमें कहा है—

"जिणंदपूजोवदेसो य" इति वचनात्।

चर्चा ११७वीं— रोहिणी व्रत विधानका क्या स्वरूप है?

समाधान—जैसे शुक्ल कृष्ण पक्ष विषै पंद्रह दिनमें अष्टमी चौदशका उपवास होइ है तैसैं सत्ताईसवें दिन रोहिणी नक्षत्र आवै है तहां उपवास होइ। शास्त्र विषै इसकी मर्यादा कही है उद्यापन सहित यह व्रत महा फलका दाता है। तदुक्तं योगींद्रदेवैः—

दीवइ दिनइ जिणवरहं मोहहं होइ णट्ठाई। अह उववासय रोहिणि सोइ विफलयं जाई। (?) अथवा शुक्ल पंचमी कृष्ण पंचमी जिनगुणसंपत्ति ज्येष्ठाजिनवर केवलचंद्रायण मेघमाला रत्नावली मुक्तावली इत्यादि जितने जैनव्रत हैं तितने सव प्रमाण हैं।

चर्चा ११८वीं— चतुर्दशी आदि तिथि घटती आन पडै है तहां व्रत विधान कैसैं होइ?

समाधान--गाथा,—विहविहिंणं च मज्झे तिहिये पडणं होइ जइ याहु।

मूलदिणं पारंभिय उत्तरदिवसम्मि होइ सम्मत्तं॥

व्रतविधानमध्ये तिथेः पतनं भवति यद् यदा खलु।

मूलदिनात्प्रारभ्य उत्तरदिवसे भवति समाप्तं॥

अर्थ—व्रतविधानमध्ये कहिये—अष्टमी चतुर्दशी आदि व्रतके विषै यदा तिथेः पतनं भवति—कहिये जब तिथिका पतन कहिये औम होइ। भावार्थ—जहां उदयमें तीन मुहूर्त व्या-

पिनी तिथि न होइ तिस तिथिका औम हुआ कहिये । तदा मूलादिनात् प्रारभ्य उत्तरादिवसे वृत-संपूर्णो भवति । तदा कहिये तब मूलादिनात् आरभ्य कहिये मूलादिनसौं आरंभ करैं, उत्तरे दिवसे कहिये अगले दिनविषैं वृतसंपूर्णो भवति कहिये वृत संपूर्ण होइ । अष्टान्हिकादि वृतकी विधि विषै भी यह ही अर्थ संभवै है। भावार्थ—तिथिका प्रमाण चोवन घडीसूं लेय पैंसठ घडी ताई होइ । तथा कुछ घाट छ्यासठ घडी होइ । पूरी छ्यासठ न होइ। तहां जो पहिले दिन साठ घडी अर अगले दिन पांच घडी होइ तौ पहिले दिन उपवास आरंभ कीजे । अगले दिनमें पांच घडी चढै तब समाप्त कीजे । पांच घडीके उरै पारणा न कीजे । इहां कोइ कहै—अगले दिन छह घडी होइ तब क्या करै ? तिसका उत्तर—पैंसठ घडीसौं तिथी का प्रमाण बढती होइ नाही यातैं अगले दिनमें छह घडी कहां सो आवै ? जो पहिले दिन साठ घडीसैं कोई तिथि घटती होइ तो अगले दिन उदय कालमें छह घडी पाइये । सो तिथि उपवासकौं योग्य है । यातैं तीनमुहूर्त की उदय तिथि जैनमें लीन कही है। इहां कोऊ पूछे तीन मुहूर्तकी व्यापिनी उदय तिथि कौनसे शास्त्रमें कही है? तिसका उत्तर—आशाधरकृत यत्याचारमें कही है । तथाहि—

श्लोकः—त्रिमुहूर्तेऽपि यत्रार्क उदेत्यस्तमयस्तथा । सा तिथिः सकला ज्ञेया प्रायो धर्मेषु कर्मसु ॥

अर्थ—प्राय इत्यव्ययः। स कोर्थः देशकालादिवशादन्यथाऽपि भवति । तदन्यथा भवनं किं ? तदुक्तं मुनिसुव्रतपुराणे—

षष्ठांशोऽप्युदये ग्राह्यास्तिथेर्वृतपरिग्रहे । पूर्वान्यतिथिसंयोगो वृतहानिकरो मतः ॥

वृतपरिग्रहे सूर्योदये तिथेः षष्ठांशोऽपि ग्राह्यः । इत्यत्रापिशब्देन षष्ठांशादधिको ग्राह्यः । इति

निर्विवादं। न न्यूनांश इति द्योत्यते । कुतः ? यस्मात् व्रतपरिग्रहाणां षष्ठांशात्पूर्वान्यातिथिसंयोगो व्रतहानिकरो व्रतनाशकरो भवति इत्यर्थः।

त्रिमुहूर्त्तेऽपि यत्रार्क उदयेष्वस्तगतेषु च। तिथिः सा सकला ज्ञेया उपवासादिकर्मसु ॥

इहां कोऊ पूछे, हम तो यों सुनी है जिस तिथिमें सूर्योदय होइ सो तिथि संपूर्ण जानना। तदुक्तं, श्लोकः—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः। सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥

तिसका उत्तर—यह श्लोक जैनका नाहीं। निर्णयसिंधु नाम वैष्णवग्रंथका है। जैन मतमें तीन मुहूर्त्तसौं घटती उदय तिथि कही नाहीं। तीन मुहूर्त्तसौं घटती उदय तिथि माने तो आज्ञा भंगका दोष लागे है। अर उपवासके दिन उपवास न हुआ तो व्रतभंग भी है। फेरि वह बोल्या हमें तो उपवास करना, व्रतभंग क्योंकर हुआ ? तिसका उत्तर—मेहके समय मेहकी वर्षा होय तो धान्य बहुत लगै।

चर्चा ११९ वीं—अष्टाह्निका व्रतकी विधि किस प्रकार है ?

समाधान—अषाढ तथा कार्तिक अथवा फाल्गुणका महीना शुक्ल पक्षकी सप्तमीके दिन देहुरे आवै, अभिषेक पूर्वक आनंदसौं अष्टप्रकारकी पूजा करै तिस दिन एक भक्तसूं रहै तबहीसूं भूमिशयन पूर्वक ब्रह्मचर्यका धारण करै। तांबूल प्रमुख शरीर संस्कारका नियम करै। चैत्यालयके मध्य मंडपकरिकैं ऊपर चंदोवा बांधै। तिस मंडपविषैं मेरु स्थापै । अष्टमीके दिन देहुरे आय अभिषेकपूर्वक पूजाका उछाह करै। तिसके अनंतर प्रभुकी प्रदिक्षणा देइ यथाशक्ति पंच-

नमस्कार मंत्रकौं जपै। तिस दिन उपवास करे। इस प्रथम दिनका नाम नंदीश्वरनाम दिना है। दस लाख उपवास कियेका फल है। नवमीके दिन समस्त पूर्वोक्त विधिकरिकैं घर आय पात्र दान कीजे। अनंतर पारणा करे। इस दिनका नाम अष्टमीभूतिनामा दिन है। यहां साठ सहस्र दश लाख उपवासका फल जानना। दशमीकौं पूर्वोक्त विधिकरि आय कंजक आहार करै। इस दिनका नाम त्रैलोक्यसार है। साठ लाख उपवासका फल है। एकादशीकौं पूर्वोक्त सब करिकैं अल्प आहार एकवार लेना। इस दिनका नाम चतुर्मुख है। पांच लाख उपवासका फल है। द्वादशीकौं पूर्वोक्त विधिकरिकैं घर आय संपूर्ण भोजन करे। इस दिनकी पंचलक्षण संज्ञा है। चौरासीलाख उपवासका फल है। इसहीकौं मुखशोधिया कहे हैं। तेरसकौ समस्त विधान करिकैं नोन विना आमलीके रससौं अकेले चांवलका भातका भोजन करै। इस दिनकी स्वर्गसोपान संज्ञा है। चालीस लाख उपवासका फल है। यह अम्बल जानना। चौदसकौं पूर्वोक्त सब क्रियाकर आवे प्रासुक तीन तरकारीसौं अकेले भातका भोजन करै। अटकवाला अशन ना करै। यह सर्वसंपत्ति दिन है। एक लाख उपवासका फल है। पूर्णमासीकौं पूर्वोक्तविधि समस्त करिकै उपवास करै प्रतिदिन कथा सुने। इस दिनका नाम इंद्रध्वज है। तीनकोड पचासलाख उपवास कियेका फल है। यह व्रत उत्तम मध्यम जघन्य भेदसौं तीनप्रकार है। उत्तम सात वर्ष, मध्यम पांच वर्ष, जघन्य तीन वर्ष। यह व्रत अनंतवीर्यने कीना सो चक्रवर्तिपदकी प्राप्ति भई। विजयकुमारने कीना सो सेनापति हुआ। जरासंधने कीना सो प्रतिवासुदेव हुआ। इस व्रतके प्रभावसौं स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति है। इस व्रतकी पूर्णताविषैं उद्यापन करै। जिनमंदिरविषे बडा उ-

त्साहसूं न्हवक पूर्वक पूजा विस्तरै । ध्वजा चंदोवा घंटा चमर ताल कंसाल कलश झारी इत्यादि चौवीस प्रकारके देहुरे देइ । पटक्षल सोना रूपेकी डोरी प्रमुख शास्त्रकौं देइ, देवकी अष्टप्रकार पूजा करै । आहारदान औषधदान शास्त्रदान अभयदान यथायोग्य करै । अर्जिकाकौं साडी देइ, क्षुल्लककौं वस्त्र देइ । चतुर्विध संघकौं भोजन करावै । इतने करनेकौं समर्थ न होइ तौ यथाशक्ति करै । व्रत दुगुणा करै । इसप्रकार स्त्री पुरुष अष्टाह्निका वृत आचरैं । भावना भावैं । तिस प्रभावसूं मोक्ष होइ । तथा इसका व्याख्यान करै, श्रवण करै, श्रद्धान करै तिसकौं महापुण्य होइ । यह कथन वृतकथा कोशमें जानना ।

चर्चा १२० वीं—वाईस अभक्ष्यविषै लौनी अभक्ष्य क्यों कही ?

समाधान—दोय मुहूर्त्तके अनंतर लौनीविषैं संमूर्छन जीव उपजै हैं । तिसतैं अभक्ष्य है । तदुक्तं—

आमिष सरस उ भाखियो सो अंध उ जो खाइ (?)। दोइ मुहूत्तहि ऊपरहिं लोणिण सम्मुच्छाइ ॥

और मूलाचारग्रंथविषैं हू मदकारक कही है । तिसतैं संयमीकौं दोय मुहूर्त्त उरै भी अभक्ष्य है ।

चर्चा १२१ वीं—विदलका क्या स्वरूप है ? और तिसमें क्या दोष है ?

समाधान—जिस अन्नके दोय दल होंइ मूंग मसूर उरद चना इत्यादिक अन्न अपक्व दही तक्रादिसौं मिलैं तौ तत्काल संमूर्छन जीव उपजैं सो मुखका वाफसौं मर जाय । ऐसैं जैन शास्त्रमें कहा है । तदुक्तं—

योऽपक्कतक्रं द्विदलानुमिश्रं भुक्तिं विधत्ते मुखवाष्पसंगे।
तस्यास्यमध्ये मरणं प्रपन्नाः सम्मूर्छका जीवगणा भवंति ॥

अन्यत्राप्युक्तं (दूसरी जगह भी कहा है) श्लोकः—

संभिन्नं द्विदलं हेयमामैस्तु मथितादिभिः। निष्पद्यंते यतस्तत्र विविधास्त्रसदेहिनः ॥

यहां कोई कहै यह तो अन्न विदलका दोष कह्या, काष्ठविदलका क्या दोष है ? तिसका उत्तर—काष्ठविदलका दोष किस ही मूल शास्त्रमें कह्या होय तो प्रमाण है।

चर्चा १२२ वीं—भरतचक्री व रामचंद्रादि सम्यग्दृष्टी हैं इनकें कौंनसा गुणस्थान कहिए ?

समाधान—जिनके पांच उदंबर तीन मकारका त्याग होइ अर सात व्यसनका त्याग होइ तिनकें पांचमा गुणस्थान कहिये। दोहा —

आठहू पालइ मूलगुण व्यसन न एकु होइ। सम्मत्ते सु विशुद्धमइ पढम उ सावय सोय ॥

यहां कोऊ पूछै—जिसने संग्राम किया होइ,जिसके हाथसौं पंचेंद्रिय जीव तथा मनुष्योंका बध होइ तिसकौं पांचमा गुणस्थान क्योंकर संभवे ? भरतजीने बाहुबलिजीके मारनेकूं चक्र चलाया, रामजीके बाणसौं अनेक विद्याधर लोक मरे इत्यादि राजपदमें त्रस बध हुआ सुनिये है। अर पांचवा गुणस्थानविषै त्रस बधका निषेध है। तातैं यह प्रसंग क्योंकर बनैं ? तिसका उत्तर-पांचवे गुणस्थानके दर्शनप्रतिमा प्रमुख ग्यारह भेद हैं। तिनमें जहां पूर्वोक्त पांच उदंबरादिका त्याग होइ तहां पहिली दर्शनप्रतिमा कहिए। भरत रामचंद्रादिने मद्य मांसादिका ग्रहण नाहीं किया। तातैं त्रसबधके परित्याग विना भी इनके पांचवां गुणस्थान संभवे है। जैसें अमावस १३७

पीछैं चंद्रमाके कलाके दर्शन विना ही शुक्लपक्ष कहिये। अर व्रत प्रतिमावालेके त्रसबधका निषेध है सो भी स्थूल त्रसबधका निषेध है। सूक्ष्म मात्र त्रसबधका निषेध उनकैं भी नाहीं। तहां गुणस्थान पांचमा है।

चर्चा १२३वीं—यादववंशके राजा उत्तम जैनी हैं, तहां नेमिनाथजीके विवाहमंगलकी विरियां श्रीकृष्णने पशु एकत्र क्यों किये ?

समाधान—श्रीकृष्णजीने पशु एकत्र नहीं किये। देशांतरसूं मांसभक्षी राजा आये तिनने एकत्र किये इह भांति हरिवंशपुराणमें है।

चर्चा १२४ वीं—राजीमति कुनसे राजाकी वेटी है ?

समाधान—राजीमति राजा भोजकी वेटी है। इहां कोऊ पूछे—उग्रसेनकी वेटी तो प्रसिद्ध है, भोजकी बेटी कैसैं है ? तिसका उत्तर—भोजका दूसरा नाम उग्रसेन है, कंसका पिता उग्रसेन न जानना। तदुक्तं वृहद् हरिवंशपुराणे—

सविधियाचितभोजसुताकरग्रहणहेतुविबोधितबांधवः।
नरपतिः सकलान् सकलत्रकानकृत सन्निहितान् कृतिगौरवान्॥

चर्चा १२५ वीं—श्वेतांबराम्नायविषै नौनकौं अति सचित्त मानैं हैं दिगंबर आम्नायविषैं क्यों कर है ?

समाधान—दिगंबर शास्त्रमें भी नौन सचित्त कह्या है। तदुक्तं धर्मामृतश्रावकाचारे—

हरितांकुरवीजांबुलवणाद्यप्रासुकं त्यजन्। जाग्रत्कृपश्चतुर्निष्ठः सचित्तविरतः स्मृतः॥

सचित्तत्यागप्रतिमाकथनावसरे कथितं (सचित्तत्याग प्रतिमाके वर्णनमें कहा है ।)

चर्चा १२६ वीं–रेशम लीन है कि अलीन है ?

समाधान–शास्त्रकी पूजाविधानविषैं रेशमका वस्त्र चढावना कह्या है । अलीन कैसें कह्या जाय ? तदुक्तं–

सिद्धैर्गुणैर्नेत्रविशालरम्यं वस्त्रं वरस्त्रीवदनोपमानं ।
सत्क्षौमकौशेयकपट्टकूलं ददामि जैनश्रुतिदेवतायै ॥

ओरुक्रियाकोषमें तथा ओर जायगै नवजापविषैं एक रेशमकी कही है ।

चौपाई–प्रथम फटक माणि मोती माल, रजत सुवर्ण सुरंगप्रवाल ।
जीवापोता रेशम जान, कमलवीज अरु सूत बखान ॥
ए नवभांति जापके भेद, भावसहित जपिए तजि खेद ।
जपकरतैं ऋधि समृद्धि लहै, क्रियाकोश शास्त्र इमि कहे ॥

चर्चा १२७ वीं–दिवालीके दिन निर्वाणपूजाका समय कौनसा ?

समाधान–तीन वर्ष साढे आठ महीने चौथे कालमें वाकी रहे तहां कार्तिकवदी चौदसके प्रभात समयसंबंधी संध्याके समयविषैं श्रीवर्धमानस्वामी मुक्त हुवे हैं । तबतैं भरतक्षेत्रविषै भव्य जीव प्रतिवर्ष दीपमालिकासौं सूर्योदय होत ही निर्वाण पूजा करै हैं । तबहीसौं लोकविषै दिवा-

१ पहिले रेशम कीडाओं द्वारा स्वतः छोडे गये नरा द्वारा होता था परतु आज कल कीडे मारकर निकाले हुये नेरा द्वारा पैदा किया जाता है इसलिये नहीं चढाना चाहिये ।

लीका उत्सव मानैं है। दिवालीतैं पीछैं निर्वाण पूजा न चाहिये। जैसैं विवाहके समय मंगलीक गीत गावै हैं। विवाह पीछे गीत गावना किस अर्थ है? यातैं चौदशके प्रभात ही निर्वाण पूजा उचित है। तदुक्तं बृहद्धरिवंशपुराणे (सोही बडे हरिवंशपुराणजीमें कहा है)—

चतुर्थकालेऽर्धचतुर्थमासकैर्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके।
स कार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसुप्रभातसंध्यासमये स्वभावतः ॥
अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातींधनवद्विबंधनः।
विबंधनस्थानमवाप शंकरो निरंतरायोरुसुखानुबंधनं ॥
स पंचकल्याणमहामहेश्वरः प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः।
शरीरपूजाविधिना विधानतः सुरैः समभ्यर्च्यत सिद्धशासनः ॥
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया।
तदास्म पावानगरी समंततः प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥
ततोऽथवै श्रेणिकपूर्वभूभुजः प्रकृत्य कल्याणमहं सहप्रजाः।
प्रजग्मुरिंद्राश्च सुरैर्यथायथं प्रयाचमाना जिनबोधिमार्थिनः ॥
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात् प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेंद्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक् ॥

चर्चा १२८ वीं—जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है सो गतिसौं गत्यंतरविषै कैसे गमन करै है?
समाधान—ऊर्ध्वगमन जीवका घरू स्वभाव है। सो संसारविषै कर्मोंके वश हुता गया है।

तिसतैं विदिशा बिना छह दिशा प्रति गमन करै है। यहां एह दृष्टांत जानना। अर जब कर्म-बंधनसौं मुक्त हो है तब ऊर्ध्वगमन करे है। पवन वर्जित अग्निकी नाईं। तदुक्तं गाथा—

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदा मुक्को। उड्ढं गच्छादि सेसा विदिसावज्जं गदिज्जंते॥

इहां कोई कहै—हम तौ यों सुनी है संसारी जीव भी मरण कालविषै एकवार ऊपरको चलै है। पीछे जिस दिशाकी आयु बांधी होइ तिस दिशाकौं कर्म लेजाइ। तिसका उत्तर—जब यह संसारी जीव देहसूं देहांतरविषै विग्रह गतिसूं जाइ है, विग्रहगति नाम वक्रगतिका है। तहां इस अंतरालवर्ती आत्माकूं उत्कृष्ट तीन समय लागै है। "एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः" इति वचनात्। सूधा दिशाकूं जाइ तौ एक समय अंतरालवर्ती रहै। दूसरे समय आहार होइ। कूनमैं जाइ तौ दोय समय अंतराल रहै, तीसरे समय आहार होइ। अधोर्ध्वकूं जाइ तौ तीन समय अंतराल रहै चौथे समय नोकर्मके ग्रहणरूप आहार होइ। अर पहिले ऊपरकूं चलै तौ एक समय उस गतिकूं चाहिये तब च्यारि समय लागैं सिद्धांतसूं विरोध होइ। यातैं संसारी जीवकी छह गति कही हैं ते ही मानना ऊर्ध्वगमन मानना नाहीं। इहां कोई पूछै—वक्रगतिके तीन समय अंतरालवर्ती कहे। सरल गतिका क्या स्वरूप है? तिसका उत्तर—जहां जिस जीवकूं पहिले ही समय आहार होइ तिसे सरल गति कहिये। सो सरल गति संसारी जीव भी करै है अर मुक्त जीवकैं भी होइ। जिससमय संसारसूं मुक्त होइ उस ही समय सिद्ध क्षेत्रविषै पहुंचै समयांतर नाहीं।

चर्चा १२९ वीं—भरतचक्रीनै बहत्तर चैत्यालय कैलास पर्वतपर कराये सुनिए है। ते क्यों कर हैं?

समाधान—भरतजीनै एक चैत्यालय कराया है। यह बात बडे पद्मपुराणविषै बालि मुनिके प्रसंगविषै कही है। रावणने कैलास उठाया है। तहां बाली मुनिने चिंतन किया है। तथाहि श्लोकः—

कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमं। सर्वरत्नमयं तुंगं बहुरूपविराजितं।

इहां कोऊ पूछे—'तीणी चउवीसीय भरहगिमावियं' यह पाठ कैसें मिलै? तिसका उत्तर—तीन चोवीसीके बहत्तर बिंब कहे हैं ते चैत्यालयमें जानने।

चर्चा १३० वीं—स्वयंभूरमणवाला मच्छ छठे नरक जाइ है इसकी भोंहमैं तंदुल मच्छ रहै है सो सातवें जाय। यों सुनी है सो कैसें है?

समाधान—काकंदी नाम नगरी तहां जैनकुलका उपज्या सूरसेन नाम राजा तिन मांस भक्षणका नियम लिया। पीछैं रुद्रमति नाम वैद्यके कहेसूं मांसपै इच्छा करी। परंतु लोकापवादके डरसूं छोडी वस्तु खाई न जाइ। तिसतैं कर्मप्रिय नाम रसोइयासूं अपने चित्तकी अभिलाषा एकांतविषैं कही। जलके थलके बिलादिकके जीवोंका मांस मगाया। राजा राजकाजकी आकुलताके वश मांस भक्षणका अवसर न पाया। कर्मप्रिय राजाकी आज्ञासौं नित्य मांसका पाक करै। ऐसैं करतैं एक दिन सांपके बालकने डस्या मरिकरि स्वयंभूरमण समुद्रविषै महामत्स्य हुआ। राजा सूरसेन भी बहुत काल पीछे मरकरि तिस महामत्स्यके कानविषै शालिसक्थ (तंदुल) नाम मत्स्य हुआ। शालिकी सींकप्रमाण देह धरी। तातैं दूजा नाम तंदुलमत्स्य ना। पूर्वोक्त महामत्स्य मुंह उवायके जब सोवै तब तिसकी गला गुफाविषै नदीके प्रवाहकी १४२

नाईं अनेक जलचर जीव आयके चले जांइ । तहां तंदुल मत्स्य देखिकैं ऐसा चिंतवन करने लगा—यह महामत्स्य बडा भाग्यहीन है । मुखमें आये जलचर जीवनिकूं खाइ नहीं सकै है। दैवयोगसूं इतनी बडी देह मेरी होती, तो सब ही समुद्र सत्त्व संचारसौं रहित करौं। ऐसैं मानसीक पापसौं मरिकैं क्षुद्र मत्स्य सातवें नरक गया । महामत्स्य भी अनेक नक्र चक्रके भक्षण-संबंधी पापसौं मरिकै सातवें नरक गया। तेतीस सागर प्रमाण दोनूंकी आयु हुई । तहां परस्पर वार्तालाप कीना—अहो क्षुद्रमत्स्य ! महा पाप करतैं मेरी उत्पत्ति यहां संभवे है तू मेरे कर्णमलका भोजी यहां क्यूंकरि उपज्या ? तब शालिसक्थ मत्स्यका जीव नारकी बोल्या—हे महामत्स्य ! तेरी चेष्टातैं भी दुरंत दुःखकौं कारणरूप खोटी भावनासूं यहां मेरा जन्म हुआ । यह शालिसिक्थ मत्स्यका उपाख्यान षट् पाहुडकी टीकामें जानना ।

गाथा—मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावे गओ महाणिरयं ।
इयणाओ अप्पाणं भावहु जिणभावणा णिच्चं ॥

चर्चा १३१ वीं—श्रेणिक आदि भावी तीर्थंकर कौन होइगे तिनके नाम क्या हैं ?

समाधान—प्रथम राजा श्रेणिक १ सुपार्श्व २ उदंक ३ प्रोष्ठिल ४ कठप्रू ५ क्षत्रिय ६ श्रेष्ठि ७ शंख ८ नंद ९ सुनंद १० शशांक ११ सेवक १२ प्रेमक १३ अतोरण १४ रैवत १५ वासुदेव १६ बलदेव १७ भगलि १८ वागलि १९ द्वीपायन २० कनकपाद २१ नारद २२ चारुपाद २३ पश्चिपरुद्र २४ ये चौवीस जीव आगामी कालविषै महापद्मादि अनंतवीर्य पर्यंत तीर्थंकर क्रमसौं होनार हैं। तहां आदिके तीर्थंकरकी आयु वर्ष ७२ काय हाथ ७, अंतके तीर्थंकरकी आयु कोडि

पूर्व, काय धनुष ५०० पांचमो। यहां कोई कहै ये नाम कहां कहे हैं? तिसका उत्तर—महापुराणके छिहंतरवे पर्वविषै कहे हैं। तथाहि श्लोकः—

ततस्तीर्थकरोत्पत्तिस्तेषां नामाभिधीयते। आदिमः श्रेणिकस्तस्मात्सुपार्श्वोदंकसंज्ञकः ॥४७१॥
प्रोष्ठिलाख्यः कठपूश्च क्षत्रियः श्रेष्ठिसंज्ञकः। सप्तमः शंखनामा च नंदोऽथ सुनंदवाक् ॥ ४७२ ॥
शशांकः सेवकः प्रेमकश्चातोरणसंज्ञकः। रैवतो वासुदेवाख्यो बलदेवस्ततः परः ॥ ४७३ ॥
भगलिर्वागलिर्द्वैपायनः कनकसंज्ञकः। पादांतो नारदश्चारुपादः सात्यकिपुत्रकः ॥ ४७४ ॥

इहां कोऊ फेरि पूछैं—हम तौ अब नाईं और नाम सुनते आये हैं। गाथा—

अट्ठहरी णव पडिहरि चक्कि चउक्को य एयबलभद्दो।
सेणियसमंतभद्दो तित्थयरा हुंति णियमेण ॥

तिसका उत्तर—प्रथम तौ यह गाथा ठीक नाहीं कौनसे शास्त्रकी है। अर पहिला नारायण वर्धमानस्वामी होइ मुक्त हुआ। प्रतिनारायण पहिला मृगध्वजनाम केवली होइ मुक्त हुवा तब आठ नारायण नव प्रतिनारायण क्यूं करि संभवै? अर आदि अंतके चौवीस होनहार जीव अंतके रुद्रपर्यंत चौथेकालविषै होंहि। अंत ताईं गिनो समंतभद्र जीव पांचवे कालविषै हुवे येह चौवीसमें क्योंकर फवे? इत्यादि और भी युक्तिसौं गाथा कथित अर्थ मिलै नाहीं। तिसतैं महापुराणोक्त अर्थकी श्रद्धा करी चाहिये।

चर्चा १३२ वीं—वर्धमानस्वामीकै मुक्त हुये पीछैं केवली तथा श्रुतकेवलीकी परिपाटी किस तरह है?

समाधान–तीनवर्ष साढे आठ महीने चौथेकालके बाकी रहे तब वर्धमानस्वामी मुक्त हुवे। तहांसौं इकीस हजार वर्ष पर्यंत इनका तीर्थ जानना। तिसमें बासठ वर्षमें तीन अनवधि केवली हुवे। तिसका ब्यौरो–जिससमय महावीरस्वामी निर्वाण हुवे उस ही समय गौतम केवली हुये। इनका ज्ञानकाल वर्ष बारा बहुरि जिससमय गौतमस्वामी मुक्त हुये तिससमय सुधर्मास्वामी मुनि केवली हुये तिनका भी ज्ञानकाल वर्ष बारा। बहुरि जिस समय सुधर्मा स्वामी मुक्त हुये तिस समय जंबूस्वामी केवली हुये तिनका ज्ञानकाल वर्ष ३८। इसप्रकार तीनों अनवधिकेवलीका काल वर्ष बासठ। तिस पीछें श्रीधर नाम अंतके श्रुतकेवली भये। सुपार्श्व नाम अंतके चारण मुनि हुये। वैरिस नाम अंतके प्रज्ञाश्रमण साधु हुये। अंगपूर्वके पाठी विना जिसकी असाधारण अतिशयवान बुद्धि होइ तिसे प्रज्ञाश्रमण साधु कहिये। श्रीनाम अंतके अवधिज्ञानी हुये। चंद्रगुप्त अंतके मुकुटबद्ध हुये। महाव्रतका ग्रहण किया। तिस पीछे क्षत्रियकुलमें दीक्षाका उच्छेद हुआ। नंद १ नंदमित्र २ अपराजित ३ गोवर्धन ४ भद्रबाहु ५ ये अंगपूर्वके पाठी पांच श्रुतकेवली हुये। इनका काल वर्ष १००। यहां ताई वर्धमानके तीर्थविषे एकसौ बासठ वर्ष हुये। तिस पीछे भरतक्षेत्रविषे श्रुतकेवली नाहीं। तिसके अनंतर विशाखाचार्य १ प्रोष्ठिल २ क्षत्रियांक ३ जय ४ नाग ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिल ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११ ये ग्यारह मुनि ग्यारह अंग दश पूर्वधारी हुये। इनका काल वर्ष १८३। तिनके अनंतर नक्षत्र १ जयपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंसार्य ५ ये पांच मुनि ग्यारह अंगके पाठी हुये। तिनका काल वर्ष १२०। तिनके अनंतर सुभद्र १ यशोभद्र २ यशोबाहु ३ लोहाचार्य ४ ये च्यारि मुनि प्रथम

आचार अंगके पाठी हुवे। तिनका काल वर्ष १०० । विनयंधर १ श्रीदत्त २ शिवदत्त ३ अर्हद्दत्त ४ ये चारो मुनि अंगपूर्वके देश पाठी हुये। इनका काल वर्ष ११८ । तहां ताईं श्रीवर्धमानके तीर्थविषै ६८३ वर्ष वीतीं। तिस पीछे भरतक्षेत्रविषै अंगधारी उच्छिन्न हुये। तिसके अनंतर अष्टांग महानिमित्तके जाननहारे भद्रबाहु नाम अंतके निमित्तज्ञानी हुये। पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु जुदे जानने। तहां गिरिनार शिखिर चंद्रगुफाके वासी धरसेन नाम साधु आग्रायणीय पूर्व पंचम वस्तुके चतुर्थ कर्मप्राभृतविषैं प्रवीण हुये। तिसका व्यौरा—चौदह पूर्वमें दूसरा आग्रायणीय नाम पूर्व है। तिसमें चौदह वस्तु हैं। वस्तु नाम अधिकारका है। तिनके नाम लिखिये हैं—पूर्वांत १ अपरांत २ ध्रुव ३ अध्रुव ४ अच्यवन लब्धि ५ संप्रणाधि ६ अर्थ ७ भौमावैयात्यं ८ सर्वार्थकल्पनीय ९ ज्ञान १० अतीतकाल ११ अनागतकाल १२ सिद्ध १३ उपाध्याय १४ ये दूसरे आग्रायणीय पूर्वके चौदह अधिकारके नाम हैं। और पूर्व संबंधी अधिकारानिके नाम विद्यमान उच्छिन्न जानने। इहां अच्यवनलब्धि नाम पंचम वस्तुविषै कर्मप्राभृत नाम अंतराधिकार है। तिसमें धरसेन नाम साधु तत्पर हैं। तिन साधुने विचारी—हमारी आयु अल्प रही। तब वसुंधरा नाम नगरी प्रति ब्रह्मचारी हाथ पत्र भेज्या। तहां जिनयात्रा निमित्त मुनिसंघ आया था तिनकूं यथोचित बंदना प्रणाम लिखिकैं व्योरा लिख्या—मेरी आयु थोडी रही है। तिसतैं बुद्धिवंत विनयवंत तरुण ऐसे दोय मुनि मेरे समीप भेजने। जातैं शास्त्रकी परंपराय टूटै नाहीं। या भांति लिख्या अर्थ वांचकै मुनिसंघने भूतवलि पुष्पदंत नाम दोय साधु महा तीक्ष्णबुद्धि जानि धरसेन मुनिके निकट भेजे। बहुत विनय भक्तिसूं आय गुरुकूं वंदना कीनी। गुरुने यथोचित

आगति अभ्यागति क्रिया कीनी पीछैं तिनकी बुद्धि परीक्षाके निमित्त हीनाधिक अक्षर समेत दोय विद्या दीनीं। हीन अक्षरवाली विद्या भूतबलिने साधी। तिसतैं कान नेत्र हीनकी विक्रियाकरि विद्या आई। दूसरी अधिकाक्षरवाली विद्या पुष्पदंतने साधी। तिसतैं बडे दंतकी विक्रियाकरि विद्या आई। तब दोनों साधुने विचार करिकै मंत्र शोधन कीया। यथोक्त विद्या सिद्ध हुई। विद्या बोली–प्रभु हमें आज्ञा दीजे। साधु बोले जो कार्य करने जोग्य तुम हो तिस कार्यसौं हमें प्रयोजन नाहीं। गुरुकी आज्ञासूं तुम्हारे साधनेका उद्यम कीया है। और कारण कोई नाहीं। इस भांति विद्याप्रति कहिकै दोनों साधु गुरुके समीप आये। सब वृत्तांत कह्या। गुरुने दोनौं मुनि शास्त्र पाठ करनेकूं योग्य जाने। उत्तम दिन शास्त्रके व्याख्यानका प्रारंभ कीना। केतेक दिनमें पाठकी समाप्ति हुई। तब धरसेन भट्टारक अपनी निकट मृत्यु जानि विचार कीया–मेरे वियोगसूं इन्हें खेद होइगा। तिसतैं दोनूं मुनीश्वर विदा कीने। अपने स्थान आइकैं शास्त्रकी रचना करी। लेखक बुलाए तीन सिद्धांत थापे। सत्तर हजार प्रमाण धवल, साठ हजार जयधवल, वीस हजार प्रमाण महाधवल। ज्येष्ठ सुदि पंचमीके दिन चतुर्विध संघ समेत अष्टप्रकारी पूजा हुई। महा उत्सव हुआ। तिस दिनसूं श्रुत पंचमी हुई। जे भव्य जीव श्रुत पंचमीका यथोक्त रीतिसूं व्रत करैं ते श्रुतके विनयसूं उच्च पद पाइ मुक्त होंइ। कर्णाटक देश विषे देवालयमें तीनों सिद्धांत विद्यमान हैं। नित्य पूजा हो है। पाठ पढने सुननेकी योग्यता वर्तमान कालमें नाहीं। तदुक्तं नीतिसारे—

आर्यिकाणां गृहस्थानां शिष्याणामल्पमेधसां। न वाचनीयं पुरतः सिद्धांताचारपुस्तकं॥

एक दिवस नेमिचंद्र सिद्धांती सिद्धांत पाठ करैं थे। कर्णाटक देशका राजा चामुंडराय आया। तिसै देखि पाठकी समाप्ति करी। और इनसौं कह्या—तुम्हे सिद्धांत पाठके श्रवणकी योग्यता नाहीं। तब राजाके अनुग्रह निमित्त गोम्मटसारकी रचना करी। यह प्रसंग कर्णाट-की यतीनिके मुंह सुनिके लिख्या है। वसुनंदी वीरनंदी कनकनंदी इंद्रनंदी नेमिचंद्रादि सिद्धां-ती हुये। ते पूर्वोक्त धवलादि सिद्धांतके पाठसौं सिद्धांती कहाये। यह हेतु जानना।

चर्चा १३३ वीं—गृहस्थने जो धन नीतिसूं उपजाया है। तिसके कै भाग करने जोग्य हैं?

समाधान—गृहस्थ अपना धन दो भाग कुटुंब निमित्त लगावै, एक भाग संचय करै। एक भाग धर्मके निमित्त लगावै। तिसकूं उत्तम दाता कहिये। अर जो तीन भाग कुटुंबके नि-मित्त लगावै, दोय भागका संचय करै, छठे भागका त्याग करै तिसे मध्यम दाता कहिये। अर जो छह भाग परिवारके निमित्त लगावै तीन भागका संचय करै, दशवें अंशकौं सात क्षेत्रमें ख-रचै। तिसे जघन्य त्यागी कहिये। इस भांति विभौके होतैं जो गृहस्थ विभाग न करै, कमी करै सो धर्मात्मा नरोंने किसीमें गिन्या नाहीं। अर जो पूर्वोक्त भागसूं अधिक दान करै सो म-हात्यागी कहिये। लोकविषे वह सूर्य प्राय: है। तदुक्तं—

भागद्वयं कुटुंबार्थे संचयार्थं तृतीयकः। तुर्यो यस्य धर्मार्थं तुर्यत्यागी स सत्तमः॥
भागद्वयं स्वपुण्यार्थे कोशार्थे तु द्वयं सदा। षष्ठं दानाय यो युंक्ते स त्यागी मध्यमो मतः॥
स्वं स्वस्य यस्तु षड्भागान् परिवाराय योजयेत्। त्रीन् संचयेद् दशांशं तु धर्मे त्यागी लघुश्च सः॥
इतो हीनं दत्ते सति च विभवे यस्तु पुरुषो, मतं तद्यत् किंचित् खलु न गणितं धार्मिकनरे॥

इमान् भागान् त्यक्त्वा वितरति बुधो यस्तु बहुधा, महासत्त्वत्यागी भुवनविदितोऽसौ रविरिव ॥

चर्चा १३४ वीं—जैनमतमें गृहस्थके तिलककी विधि किस प्रकार है ?

समाधान—तिलक छह प्रकार कह्या है सोई कहै हैं—

अर्धचंद्रातपत्रांह्रिपीठचक्रं तथैव च । तिलकं चेति षोढा स्यात् चंदनेन प्रलेपनं ॥

अर्थ—अर्धचंद्र कहिये अर्धचंद्रमाकार, आतपत्र कहिये छत्रत्रयके आकार, अंह्रि कहिये मानस्तंभके आकार, पीठ कहिये सिंहासनके आकार, चक्र कहिये धर्मचक्रके आकार, च कहिये बहुरि तथैव कहिये तैसें ही धर्मचक्रतें छोटा आकार 'इति चंदनेन प्रलेपनं षोढा तिलकं स्यात्' इस भांति चंदनकरि प्रलेपन है सो छह प्रकार तिलक है । भावार्थ—पूर्वोक्त आकार चंदनसूं मस्तकादिविषें करिये सो छह प्रकार तिलक जानना । आगें छह प्रकार तिलकके आकार काहेतैं हैं सो कहे हैं ।

आतपत्रं जिनेंद्राणां छत्रत्रयमिदं स्मृतं । अंह्रिस्तु मानस्तंभः स्यात् पीठः सिंहासनं मतं ॥ १ ॥
अर्धचंद्रमसौ पांडुशिला संकल्पते खलु । या पूता तीर्थकृज्जन्ममज्जनाम्भोभिरुच्चकं ॥ २ ॥
चक्रं धर्मचक्रं स्यात् तिलकं तु तदल्पकं । एतत्सर्वं च सधार्यं पूर्वभाले यथोचितं ॥ ३ ॥

आगें इन तिलकोंके अधिकारी कौंन हैं ते कहे हैं । श्लोकः—

अर्धचंद्रातपत्रं वै क्षत्रियाणामिति स्मृतं । आतपत्रांह्रिपीठाश्च ब्राह्मणानां प्रकीर्तितं ॥

१ क्षत्रियोंको अर्ध चद्राकार और छत्राकार तिलक देना चाहिये, क्षत्र मानस्तम और सिंहासनके आकार ब्राह्मणोंको, छत्र और मानस्तंभके आकार वैश्योंको तथा श्रेष्ठ शूद्रोंको चक्रके आकार तिलक लगाना चाहिये ।

आतपत्रं तथैवांह्रिः विशश्चापि च सम्मतं । सच्छूद्रस्य भवेचक्रं परस्य तिलकं भवेत् ॥

आगैं कौंन कौन स्थानविषै तिलक कीजे अर किस निमित्त कीजे । श्लोकः—

जिनेंद्राणां ललाटे च सिद्धानां हृदये तथा ।
आचार्याणां श्रीकंठे पाठकानां दक्षिणे भुजि ॥
साधूनां वामभागे च पंचस्थानं प्रकीर्तितं ॥

इहां कोऊ पूछै—कोऊ आचमन दंतधावन तिलक सूतक इत्यादि गृहस्थ कर्मकी विधिविषै दोष मानै तिसका समाधान—

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः । यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र नो व्रतदूषणम् ॥

चर्चा १३५ वीं—चौरासी लाख योनिका क्या स्वरूप है ?

समाधान—संसारी जीवोंका जन्म तीन प्रकार—सम्मूर्छन जन्म १ गर्भजन्म २ औपपादिक जन्म ३ । जीवनै जिस आकार क्षेत्रकी आयु बांधी होइ पूर्व शरीरकूं छोडिकै तहां जाइ तिष्ठै तब ही दसू दिशातैं शरीराकार परिणमनै जोग्य पुद्गलस्कंध आइ शरीराकार होइ परिणमै तिसे सम्मूर्च्छन जन्म कहिये । जहां माता पिताके रजवीर्यका संयोग होय तहां जीव आय उपजै रज वीर्यके पिंडकौं शरीर भावकरि ग्रहण करै तिसै गर्भ जन्म कहिये । संपुटशय्या तथा उष्ट्रादि मुखाकार देव नारकीके उत्पत्ति स्थान हैं तिनके समीप जाइ जीवका जन्म होइ तिसे औपपादिक जन्म कहिये । इस तीन प्रकारके जन्मकी नवप्रकारकी जोनि है । सचित्त १ अचित्त २

१ जैनी लोगोंके लौकिक समस्त ही विधि मान्य है परतु उन विधियोंके करनेसे सम्यक्त्वमें दोष और व्रत खंडित न होते हों।

मिश्र ३ शीत ४ उष्ण ५ मिश्र ६ संवृत ७ विवृत ८ मिश्र ९। इनका वर्णन—चेतना संयुक्त होइ तिसे सचित्त योनि कहिये । तथा और जीवनिके प्रदेशनिकरि परिगृहीत पुद्गल स्कंध होइ तिनकौं सचित्त कहिये । इस लक्षणसूं विपरीत होइ तिसे अचित्त योनि कहिये। दोनूं लक्षणसूं मिश्रित होइ तिसे मिश्र योनि कहिये । जिसका शीत स्पर्श होय तिसे शीत योनि जानना। जिसका उष्ण स्पर्श होइ तिसे उष्ण योनि जानना। शीतोष्ण मिश्र स्पर्श होइ तिसे मिश्र योनि कहिये। प्रकटाकार पुद्गल स्कंध होंइ तिसे विवृत तथा खुली योनि काहिये अप्रकटाकार पुद्गल स्कंध होंइ तिसे संवृत तथा मुंदी योनि कहिये। दोनूं लक्षणयुक्त उभयात्मक पुद्गल स्कंध होंइ तिसे मिश्र योनि कहिये । पूर्वोक्त सम्मूर्छनादि तीनूं जन्म कहां संभवै हैं सो लिखिये है—जरायुज १ अंडज २ पोतज ३ इन तीनूकें गर्भ जन्म है। जालसौं वेष्टित मनुष्य वृषभादि उपजै तिसे जरायुज कहिये । अंडसूं पंखी तथा सर्पादि जीव उपजैं तिसे अंडज कहिये । आवरण (झिल्ली) रहित संपूर्ण अवयवलिये श्वान तथा मार्जारादि जीव उपजैं तिसे पोतज कहिये। ये तीनौं भेद गर्भके जानने । च्यारि प्रकारके देवता तथा धम्मादि नरकके नारकीनिके उपपाद जन्म है। बाकी एकेंद्री द्वींद्री तेइंद्री चौइंद्री केतेक पंचेंद्री तथा अलब्ध पर्याप्तके सम्मूर्छन जन्म है। इन तीनौं जन्मभेदविषें नव योनि कहां कहां संभवे? इह लिखिये है—

प्रथम सम्मूर्छनवाले जीवनिकी योनि तीनप्रकार है । केई सचित्त योनि हैं, केई अचित्त योनि हैं, केई मिश्र योनि हैं। साधारण वनस्पतिवाले जीवनिकी सचित्त योनि है। पृथ्वी आदि जीवनिकी अचित्त योनि है और मिश्र योनि है। गर्भज जीवनिकी मिश्र योनि है । पुरुषका

वीर्य अचित्त है माताका रज सचित्त है। दोनों मिलकैं एक होंइ तब जीव उपजनेकौं योग्य है। यातैं गर्भजकी मिश्रयोनि संभवै। अर जहां केवल अचित्त वीर्यसौं ही उत्पत्ति है तहां माताका उदर सचित्त है। तहां भी मिश्रयोनि संभवै। उपपाद जन्मवाले जीवनिकी अचित्त योनि है यातैं देव नारकीके उपपाद संबंधी पुद्गल प्रचय अचित्त हैं। सम्मूर्छन जन्मवाले जीवनिविषैं अग्निकायके उष्णयोनि है। बाकी पृथ्वी आदिके जीवनिविषैं केई शीत योनि हैं, केई उष्ण योनि हैं, केई शीतोष्ण मिश्रयोनि हैं। असैं गर्भज जीवनिकी भी योनि तीन प्रकार है। उपपाद जन्मवाले देवता नारकी शीतोष्ण योनि हैं। जातैं उपपाद स्थान केई शीत हैं केई उष्ण हैं। सम्मूर्छन जन्मवाले एकेंद्री तथा उपपाद जन्मवाल देवता नारकी हैं तिनकी संवृत योनि है। विकलत्रय जीवनिकी विवृतयोनि है। गर्भज जीवनिकी संवृत विवृतरूप मिश्रयोनि है। इसप्रकार नव मूलयोनि हैं। इनहीके अंतर्भेद चोरासी लाख हैं। तदुक्तं गाथा—

णिच्चिदरधादुसत्त य तरु दस वियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयातिरियचउरो चउदस मणुए सदस्सहसा॥ जीवकांड ८९॥

इहां कोऊ पूछै—चौरासी लाख अंतर्भेद योनिसंबंधी कहे। तिनका क्या स्वरूप है? तिसका उत्तर—जिन पुद्गल स्कंधनिविषैं संसारी जीव जन्म धरैं तिनकौं योनि संज्ञा है। ते योनि समान स्पर्श रस गंधवर्णके भेदनिकरि चौरासी लाख जातिकी कही हैं। जिस योनिका स्पर्श रस गंध वर्ण एकसा होइ सो एक जाति कहावें। इस भांति चौरासी लाख जाति हैं। यद्यपि स्पर्शादिविषैं व्यक्ताव्यक्तकरि अनंत भेद हैं तिनकी समानताकरि भी बहुत भेद हैं तथापि तिनके अंतर्गत भेदनिविषैं चौरासी लाख जातिकी चौरासी लाख योनि हैं सो जाननी।

चर्चा १३६ वीं–संसारी जीवनिके एकसो साढे निन्याणवे लाख कोडि कुल कहे हैं । अर चौरासी लाख योनि कहीं । तहां योनि तथा कुलविषैं क्या भेद है ?

समाधान–योनि नाम उत्पत्ति स्थानका है। कंदयोनि मूलयोनि अंडयोनि गर्भयोनि रसयोनि स्वेदयोनि इत्यादि जीवनिके उत्पत्ति स्थान हैं । इनकी योनि संज्ञा जाननी । इनविषै अनेक जातिके जीव उपजें तिनके भेदकी कुलसंज्ञा है । तिसका उदाहरण–वट पीपल इत्यादि एकेंद्रीके कुल, सीप इत्यादि वेंद्रीके कुल, चीटी खटमल इत्यादि तेइंद्रीके कुल, भौंरा माखी इत्यादि चौइंद्रीके कुल, तिर्यंचविषें गाय भैंस इत्यादि मनुष्यविषै क्षत्रियादि पंचेंद्रीके कुल जानने। योनि कुलका दृष्टांत लिखिये है–जैसैं एक गोवरका पिंड है। तिसविषै कालेकीट कृमी पटवीजना वीसी इत्यादि अनेक जातिका जीव उपजै तहां गोवरका पिंड तो योनि है। तिसमें जीवनिकी जातिभेद है सो कुल है । इहां कोऊ पूछे–एकसौ साढे निन्याणवे लाख कोडि कुल सव प्रसिद्ध हैं। तिनमें चौदह लाख कोडि मनुष्यके कुल हैं ते कहां कहां संभवैं ? तिसका उत्तर–विदेह तथा विजयार्ध नाम शाश्वते क्षेत्र हैं । तहां क्षत्रियादिविषैं अनेक गोत्र भेदयुक्त शाश्वते मोक्षयोग्य कुल हैं। तिनमैं मनुष्यनिकी कुलसंज्ञा संभवै । इहां कोई पूछै–विदेहनिविषै तथा विजयार्धविषै सब मनुष्यनिके कुल शाश्वते कहे हैं। अर सब ही मोक्षकूं योग्य कहे। यह बात तुम क्यूंकरि जानी ? तिसका उत्तर–मिथ्यात्वसौं लेइ अयोगि पर्यंत गुणस्थाननिविषै मनुष्यके चौदह लाख कोडि कुल कहे हैं यातैं सब मनुष्यनिके कुलकी संज्ञा मोक्ष योग्य जानी गई। यह ठाणेके यंत्रविषै देखि लेना। और भी कोई पूछे–विदेहनिविषै ब्राह्मण विना तीन प्रजा शाश्वती

हैं क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,। तिसमैं शूद्रवर्णकौं मोक्ष क्योंकर संभवै ? तिसका उत्तर—भरत अर ए-रावत क्षेत्रकी अपेक्षा शूद्र वर्णकौं मोक्षका निषध है। वेदहानिविषै नाहीं। फेरि पूछै—यह बात क्यूं करि जानी ? उत्तर—जैसैं चौदह गुणस्थाननिविषै चौदह लाख कोडि मनुष्यनिके कुल कहे हैं त्योंही मनुष्यनिकी चौदह लाख योनि भी कही हैं। त्यूं शूद्रवर्णकी योनि मनुष्यनिकी योनि संख्यासूं कोई जुदा नाहीं यातैं यह भी जाणी गई। चौवीस ठाणेके यंत्रमें यह भी कथन देख लेना।

चर्चा १३७वीं—यह संसारी आत्मा अनादिसूं सात तत्त्वरूप समय समय निरंतर परिणमैं सो क्यूंकर है ?

समाधान—मिथ्यात्वसौं लेइ सयोगी पर्यंत अपने गुणस्थानके अनुसार एक समयविषै जीव सात तत्त्वरूप परिणमै है। अयोगी गुणस्थानविषै आश्रव बंध नाहीं तिसतैं तहां न संभवै और सब गुणस्थान विषै संभवै। प्रथम जीवसूं अजीवको अनादि संबंध है ही, ज्ञानावरणादिक कर्मका आश्रव समय समय है। ऐसैं ही प्रति समय बंध है। जो प्रकृति आश्रव योग्य नाहीं तिसका संवर है। अर इस संसारी जीवकैं समय समय अनंत वर्गणामयी समयप्रबद्ध जो बंधै है सो नानागुणहानि तथा गुणहानिरूप होय लेखे बंध खिरै है। एक कर्मकी स्थितिविषै असंख्याती नानागुणहानि हैं। तिनमैं एक एक नानागुणहानिका काल असंख्यात समयमात्र है। तिनविषै समय प्रबद्ध आधा आधा होय खिरै है। इसहीका नाम अर्द्ध गुणहानि है। इस नानागुणहानिविषै असंख्यात गुणहानि है। तिनका काल एक समय है। इनमें पहिले पहिले समयतैं अगले अगले

समयविषैं कुछ गिणतीकर वर्गणा घाटि खिरै हैं । यह कर्मनिकी निर्जराका क्रम है । याहीतैं जीवके समयप्रबद्धकी द्व्यर्धगुणहानिमात्र सदाकाल चली जाहै । इस भांति समय समय निर्जरा जाननी । यह एकदेश कर्मक्षरणरूप समय समय मोक्ष है। ऐसैं एक समयविषै जीवका सात तत्त्वरूप परिणमन जानना। कोई पूछै—अंतरालवर्ती जीवकैं क्योंकरि संभवै ? उत्तर—कार्माण योगकी अपेक्षा संभवै ।

चर्चा १३८ वीं—जितने जीव व्यवहार राशितैं मुक्त होंइ, तितने ही नित्यनिगोदसौं निकसि व्यवहारराशिमें आवैं ऐसी कहनावत है सो क्योंकर है ?

समाधान—इस संसारमें निगोदराशि दोय प्रकार है। एक नित्यनिगोद, दूजा इतरानिगोद। जो जीव अनादिसूं कबहूं बेंइंद्री आदि त्रस पर्यायकौं प्राप्त हुये नाहीं बहुधा कबही प्राप्त होनेके भी नाहीं ऐसे अनंत जवि हैं तिनकी नित्यनिगोद संज्ञा जाननी। तदुक्तं गोम्मटसारे गाथा—

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो। भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचांति॥

अन्यत्राप्युक्तं (और जगह भी कहा है) श्लोकः—

त्रसत्वं न प्रपद्यंते कालानां त्रितयेऽपि ये। ज्ञेया नित्यानिगोतास्ते भूरिपापवशीकृताः ।

तिसतैं जिनके निगोद भवका आदि अंत नाहीं तिनकूं नित्यनिगोदपना सिद्ध हुआ। अर जे जीव चतुर्गतिविषै भ्रमण करते निगोदमें उपजै हैं तिनकें निगोदके भवका आदि अंत है तिनकौं अनित्य तथा इतर तथा चतुर्गति निगोद संज्ञा है। इस भांति ये दोय राशि अनंतानंत जीवमयी अनादि निधन हैं। तहां विशेष इतना-जब मोक्षका विरहकाल छह मासका वीतै

है तब आठ समयविषै छहसै आठ जीव यथोक्त समयकी संख्याकरि चतुर्गतिसंबंधी जीवराशितैं निकसिकैं मुक्त होंइ। तितने ही जीव नित्यनिगोदके भवकौं छांडिकै चतुर्गतिके भवकौं धरैं हैं। यह नियम गोम्मटसारविषै कायमार्गणाके अधिकारमें देखना। तहां कोऊ पूछे—छह महीनेका विरहकाल मोक्षका हो है। छहमास ताईं अढाई द्वीपसूं कोई जीव मुक्त न होइ ऐसा विरहकाल कब पडै है? उत्तर—दशाध्याय सूत्रविषै प्रथम सूत्रकी भाषा टीका कनककीर्ति नाम पंडितने करी। तहां लिख्या है—एकसौ अडतालीस चौवीसी वीतैं तब एक हुंडक नाम काल आवै। इतने ही हुंडक काल जांइ तब मोक्षमार्गका विरह काल पडै। छह मास ताईं कोई जीव मुक्त न होइ। गाथा——

इकसया अडियाला चौवीसी गया य हुंति हुंडकं।
तेंति य हुंड गयाइं विरहकालो होदि मोक्खस्स॥

चर्चा १३९ वीं—आदिपुराण प्रमुख जैनपुराणनिविषैं केतेक साधर्मी जन अरुचि करैं हैं। रागवर्धनरूप मानै हैं। यह श्रद्धान योग्य है कि अयोग्य है?

समाधान—जैनपुराणके कर्ता बहुधा जिनसेनादि मुनि हैं। ते रागवर्धन क्यों करेंगे? वेही रागवर्धन करैं तो वैराग्यवर्धन कौन करेगा? शृंगारादिका वर्णन है सो राग बढावनेके आश्रयसौं नाहीं हैं। पुण्याधिकारी जीवनिके पुण्यातिशयका निरूपण है। तथा उनके साहसकी प्रशंसा निमित्त है। और देखो महापुराणविषै जयकुमार सुलोचनाके भोग शृंगारका अद्वितीय वर्णन कीया अंत वैराग्य ही चढाया। तथाहि——

एवं सुखान्यतनुजान्यनुभूय तौ च नैवेयतुश्चिरतरेऽप्यभिलाषकोटिं ।
धिकष्टमिष्टविषयोत्थसुखं सुखाय तद्वीतविश्वविषयाग बुधा यतध्वं ॥

तिसतैं यावंत जैनके पुराण हैं ते वैराग्यकूं आद्वितीय कारण हैं रागके कारण नाहीं। और जैनके शास्त्र च्यारि अनुयोगरूप हैं संवेग वैराग्यके कारण सब ही हैं । तिसमैं प्रथम अवस्थाविषै प्रथमानुयोग मुख्य है। तहां तीर्थंकरादि शलाका पुरुषनिके माहात्म्यका तथा तिनके साधनका वरणन चलै, जिनके नामोच्चारणतैं पाप क्षय होइ, पुण्य पाप क्रियाका फल जाना पडै । इत्यादि अनेकप्रकार कल्याणकारी है। तदुक्तं महापुराणे गुणभद्राचार्येण—

धर्मोऽत्र मुक्तिपदमत्र कवित्वमत्र, तीर्थेशिनां चरितमत्र महापुराणे॥
यद्वा कवींद्रजिनसेनमुखारविंद—निर्यद्वचांसि न मनांसि हरंति केषां ॥ ३८ ॥

अर जिनसेनादिकृत पुराणविषै जो काव्यरस है तिसकौं जे काव्यरसके रसज्ञ हैं ते ही जानैं। औरका विषय नाहीं परंतु जानना जोग्य है। तदुक्तं—

यो जैनसत्काव्यरसानभिज्ञः सोऽयं पशुः पुच्छविषाणहीनः ॥
चरत्यसौ यत्र तृणं कदाचित्, तद्भागधेयं परमं पशूनां ॥

इहां कोऊ पूछै—इस जायगै तो जैनपुराणकी बडी प्रशंसाकरी अर राजमल्ली टीकामैं लिख्या है—इहां नाटक समसारादिग्रंथ वैराग्योत्पादक हैं। भारत रामायण रागवर्धक हैं सो क्यों लिख्या है ? तिसका उत्तर—जैनमें भारत रामायण है नाहीं, परमतके शास्त्र हैं तिनका निषेध कीना है। तदुक्तं गोम्मटसारे—

आभीयमासुरक्खं भारहरामायणादि उवएसा । तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाणंति णं वेंति॥

अस्यार्थः–आभीतासुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशाः–आभीत कहिये अंजनादि विद्याके निरूपक चौरनिके शास्त्र, आसुरक्ष कहिये बध बंधादिक प्ररूपक कोतबालानिके शास्त्र, भारत कहियें कौरव पांडव युद्ध पांच पुरुषकी एक स्त्री इत्यादि विपरीत कथामय भारत, रामायण कहिये सीताहरण राक्षस वानरका संग्राम इत्यादि राम रावण संबंधी रामायण शास्त्र ऐसैं और भी स्वेच्छाकल्पित प्रबंध हैं ते तुच्छ कहिये परमार्थ शून्य हैं। असाधनीयाः–याहीतैं सत्पुरुषनिकरि आदर करने योग्य नाहीं। तत इदं श्रुताज्ञानं इति ब्रुवंति–ऐसे कुशास्त्रनिकौं सुनिकैं मिथ्याज्ञान उपजै तिसे कुश्रुत नाम आचार्य कहै हैं। इह जानि जैनपुराणविषैं कदाचित् अरुचि न करनी। इत्यादि जैन मतकी चरचा विषै अनेक भ्रांति कालयोगसौं पडी तिनका निर्णय सामान्य बुद्धिसौं कहां ताईं होइ। वाणिगी मात्र लिखी है जे बहु श्रुती बुद्धिमान हैं अर जिनकी सरल बुद्धि है ते थोडे ही लिखेसैं बहुत जानि लेंगे, भ्रांति मिटि जायगी। तदुक्तं—

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि। प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः॥

अर जो हठग्राही जीव हैं तिनका उपाय नाहीं है। तदुक्तं–

शक्यो वारायितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो, नागेंद्रो निशितांकुशेन समदो दंडेन गोगर्दभः॥
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मंत्रप्रयोगैर्विषः, सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधं॥

इहां एक गुणग्राही सज्जनतैं मेरी अरदास है। प्रथम आरंभविषै भी करी है। अब फेरि करूं हूं। यह चरचा समाधान नाम ग्रंथ मान बढाईके आशयसूं अथवा अपनी प्रसिद्धि बढावनेकूं तथा वचनके पक्षसौं नाहीं लिखा यथावत् श्रद्धानके निमित्त शास्त्रकी साखसौं लिखा है। चर्चा मनमें आवैं ते माननी, नाहीं आवैं तहां मध्यस्थ होइ मुझपै क्षमा भाव करने। शा-

स्त्रविरोधी वचनका फल मुझे होइगा तुम्हें अपनी सज्जनताकी मर्यादा न छोडनी। आगे बडों-ने द्वेषी अपराधी जीवोंको भी आशीर्वाद दीना है। तथाहि गाथा—

दुज्जण सुही य उ होऊ जगे सुयण पयामिऊ जेण। अमियविमहंवा सरित मही जीममरण उच्चेण (?)

इस पंचमकालमें जैनके शास्त्र बडे उपकारी हैं। यावत् काल इनका अवगाहन रहै तावत् ज्ञानका प्रकाश होय। इंद्रियोंका अवरोध होय। जैसैं सूर्यके उदय उद्योत होय अर घूघूनाम जीव अंध हो जाय है। तिसतैं शांत भावसौं निरंतर शास्त्राभ्यास करना सर्वथा जोग्य है। एक अठारह अक्षरमायें प्रबोधसार नाम ग्रंथ है। तहां यूं कह्या है—

श्रुतबोधप्रदीपेन शासनं वर्ततेऽधुना। विना श्रुतप्रदीपेन सर्वं विश्वं तमोमयं॥

अब और इस शास्त्रकी समाप्ति विषै सिद्धांत लिखिये है। जितने जैनके शास्त्र हैं तिन सबका सार इतना ही है व्यवहार करि पंच परमेष्ठीकी भक्ति, निश्चयकरि अभेद रत्नत्रय-मयी निजात्माकी भावना ए ही शरण है। तदुक्तं गाथा—

दंसणणाणचरित्तं सरणं सेवेह परमसिद्धाणं। अण्णं किंपि न सरणं संसारसंसरंताणं॥

अन्यच्च—एगो मे सासदो अप्पा णाणं दंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

इस प्राकृतका अर्थ विचारके विषय कषायसौं विमुख होइ शुद्ध चैतन्य स्वरूपकी निरंतर भावना करनी। यही मोक्षका मार्ग है। तदुक्तं गाथा—

जेण णिरंतर मणधारियउ विसयकसायहं जंतु। मोक्खह कारण पतडउ अणूणतं तणं मंतु॥
जं सक्कइ तं कीरइ जं ण सक्केइ तं च सद्दहणं। सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं॥
तवयरणं वयधरणं संजमसरणं सव्वजीवदयाकरणं। अंते समाहिमरणं चउगइदुक्खं निवारेई॥
अंतो णत्थि सुइणं कालो थोवो वयं च दुम्मेहा। तं णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं क्खयं कुणई॥

चर्चा
१०

तदुक्तं समाधिशतके (समाधिशतकमें कहा है)—

तद्ब्रूयात्तत्परान् पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्। येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ।५३।

दोहरा—अठारहसै षड होत्तरें माघमास अवसान। सुकलपक्ष तिथि पंचमी ग्रंथसमापति ठाण ॥

भूधर विनवै विनयकरि सुनियौ सज्जन लोग। गुणके ग्राहक हूजिये इह विनती तुम जोग ॥

गुणग्राही शिशु थन लगै रुधिर छोडि पय लेत। इह बालकसौं सीखिये जो शिर आये सेत ॥

धिक् दुरजनकी बाणिकौं गुणतजि ओगुण लेइ। गजमस्तकमणि छांडिकैं वायस अभख भखेइ ॥

दुरजन ओगुण ही गहै गुणकूं देइ बहाय। ज्यौं मोरीका जालमैं घास फूंस रहि जाय ॥

द्वेषभावसम जगतमैं दुखकारण नहि कोय। मैत्री भाव समान सुख और न दीसै लोय।

मैत्रीभाव पीयूस रस वैरभाव विषपान। अमृत होत विष खाइये किस गुरुका यह ज्ञान ॥

कहा मानगिरि चढि रहे अब उतरो बलि जाऊं। चर्चा निर्णय ग्रंथ यह भेंट तुम्हारे नाऊं ॥

रातिदिवस चिंतन कियो विविध ग्रंथको भेव। देखि दीनका श्रम अधिक दया दक्षिणा देव ॥

जिनमत महल मनोग अति कलियुग छादित पंथ। ताकी मोल पिछानियो चर्चा निर्णय ग्रंथ ॥

चर्चा निर्णयकौं पढत बहुत भ्रांति मिटि जाइ। हठग्राही हठपर रहै सो इलाज कहुं नाइ ॥

दिवस दिवाकर ऊगवै सबहीको भ्रम जाय। अधिक अधेरो घूघकैं ताको कौन उपाय ॥

सर्व कथनको मथन इह जिनमत मर्म पिछान। जैनधरम जग कलपतरु सेवो संत सुजान ॥

सेवा श्री जिनधर्मकी करै सकल शुभ श्रेय। पयकी दाता गाय ज्यू दोहण हारकूं देय ॥

चौपाई—जैनधर्म दुर्लभ जगमांहि, विन सेवैं शिवदायक नाहि।
समझि सोच उर देखो भलैं, कांठे धरे धाण नहि फलैं ॥

अथ अवसान मंगल।

देवराज पूजित चरण असरण शरण उदार। चहुसंघ मंगलकरण प्रियकारिणी कुमार ॥

इति चर्चासमाधान ग्रंथ समाप्तं।

चर्चा समाधान ।

समाप्त